वर्तमान
संदर्भ
जनवरी - मार्च 2003
१५ रुपया

CITYWIDE STUDY CIRCLE

LALJI HIRJI ROAD, MAIN ROAD, RANCHI 834001. PH. 2205270(O)

AN IDEAL COACHING CENTRE FOR

IIT, Medical & Other Engg. Ent. Exams.

XIth, XIIth & I.Sc. Board Exams.

Admission is going on for

Subjectwise Batches (Admission after test)

PHYSICS *for*

Afternoon Batch

IIT 2003 & 2004

Through H. C. Verma & I. E. Irodov

MED. 2003 & 2004

With selected problems from H. C. Verma

Advanced Level Batch for IIT 2003 & 2004

Advanced Level Batch for Medical 2003 & 2004

TEST SERIES

for Medical 2003 & IIT - JEE 2003 is going on

IIT JEE 2003 **MEDICAL 2003**

XIIth / I.Sc. studying students are eligible.

IIT JEE 2004 **MEDICAL 2004**

XIth + XIIth / I.Sc. studying students are eligible.

TEST CENTERS

CITYWIDE STUDY CIRCLE : ▸ LALJI HIRJI ROAD, MAIN ROAD RANCHI-01 PH. 2205270

CITYWIDE PLUS : ▸ SOUTH OFFICE PARA DORANDA RANCHI, PH. : 2501698

▸ CIRCULAR ROAD NEAR R.W.C. (ART'S BLOCK) RANCHI, PH. : 2311580

▸ RATU ROAD FIRST FLOOR, DAYAL COMPLEX, RANCHI, PH. : 2283498

साहित्य, संस्कृति एवं नैतिक चेतना की त्रैमासिक पत्रिका

जनवरी - मार्च 2003; वर्ष 3, अंक 8

प्रधान संपादक - डॉ० राम कुमार तिवारी
संपादक - संगीता आनन्द

उपसंपादक - मीनाक्षी भगत
संपादकीय सहयोग - अनसूया अग्रवाल
व्यवस्थापन सहयोग - रतनलाल अग्रवाल
परामर्श मंडल - डा० पूर्णिमा केडिया
कनक लता
संरक्षक - गोपीचंद सिंह
राजीव रंजन प्रसाद

संपादकीय संपर्क
संगीता आनंद
संपादक 'वर्तमान संदर्भ'
टैगोर हिल रोड, मोराबादी (पं०)
राँची - 834 008

☎ - 0651 - 2542930

मूल्य - एक प्रति : 15 रुपये
वार्षिक - 50 रुपये
त्रैवार्षिक - 150 रुपये
पंचवर्षीय - 250 रुपये
विदेशों में - 30 डॉलर
आजीवन - 1000 रुपये

सारे भुगतान ड्राफ्ट/चेक/मनीआर्डर (बाहर के चेक अतिरिक्त शुल्क के साथ) संगीता आनन्द (सं.-'वर्तमान संदर्भ'), राँची के नाम से भेजें।

संपादन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यावसायिक।
'वर्तमान संदर्भ' में प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।
संगीता आनन्द द्वारा संपादित, प्रकाशित एवं प्रिंटवेल, एस०एन० गांगुली रोड, राँची में मुद्रित।

अनुक्रमणिका

कहानियाँ

आलेख

विचार

व्यंग्य

कविताएँ

लघुकथाएँ

परिचर्चा

स्तम्भ

आवरण चित्र : सर्वेश

संदर्भ-सुधा

काम के अर्थ अनेक हैं, कार्य, कृत्य, रोजगार
इन्द्रिय विषम भोग कौशल समझे वो होशियार।

— काम का अर्थ कामकाज से लेकर कामकेलि तक विस्तृत है। कहा गया है कि जीवन का यह महत्वपूर्ण पहलू है। इसे जानना और समझना चाहिए।

— मानव जीवन के चतुष्टय पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में काम का होना ही स्पष्ट करता है कामकाज के मध्य काम एक अनिवार्य तत्व है तो अर्थ, धर्म, और मोक्ष जैसे तत्वों के बीच भी इसकी गणना करना इसकी महत्ता को अंगीकार करना है।

— धर्म और मोक्ष के लिए शास्त्रकारों ने किसी भी सीमा रेखा का निर्धारण नहीं किया है किन्तु अर्थ और काम के लिए सीमा रेखा खींच दी गयी है।

■ अर्थ मानव जीवन के लिए जरूरी है किन्तु इसकी असीमित लालसा पाप को जन्म देती है।

■ काम एक मानव के लिए उतना ही उचित है जितना से उसे 'कामी' की उपाधि न मिले। अर्थात इन दोनों के लिए सीमा का अतिक्रमण अनुचित, अव्यवहारिक और गर्हित है। आइये काम को कुछ विशेष दृष्टि से देखें:

— काम की दो पत्नी है - रति और प्रीति,

— काम श्रद्धा और धर्म के पुत्र का नाम है,

— काम के एक पुत्र का नाम है हर्ष;

दूसरी ओर

— काम से पीड़ित ब्रह्मा अपनी पुत्री से प्रेम करने लगे (भले ही ब्रह्मा ने काम को इसके लिए श्राप दिया)

— काम ने नवदुर्गा को भी काम पीड़ित किया था।

— इसके उपयोग से और इसके प्रसंग से इसका अंत नहीं होता बल्कि आहुति पड़ने पर अग्नि के तुल्य प्रचंड हो जाता है।

■ भाव यह झलकता है कि काम के कारण जीवन में रति और प्रीति जैसे शुभ तत्वों का उद्भव होता है तो वहीं मानव जीवन में उसके माता-पिता के रूप में श्रद्धा और धर्म भी उत्पन्न होते हैं तथा काम के पुत्र रूप में हर्ष की प्राप्ति होती है। शर्त है कि काम का व्यवहार भोग संतुलित रहे।

■ असंतुलित काम, शाप का कारण बन जाता है। बड़े से बड़े लोग भी इस असंतुलन से पीड़ा भोगते हैं और असंतुलित काम धीरे-धीरे अनंत काम बनने लगता है। हमें इसी असंतुलन से बचना है।

एक शाश्वत प्रश्न है कि काम जैसे शक्तिशाली तत्व को जीवन में संतुलित कैसे रखा जाये? ब्रह्मा, शिव, और नवदुर्गा जिससे न बच सके उस काम से सामान्य मानव कैसे बचे? अर्थात कैसे संयम बरते, क्या-क्या उपाय करे?

— आप गहराई में उतरकर विचार करें तो पाएँगे कि लोक व्यवहार में जितने भी आचार-विचार और कृत्य हैं अगर कोई आचार, व्यवहार या कृत्य पूर्णतः व्यक्तिगत है तो उसे गोपनीय रखने का नियम हमारे शास्त्रकारों ने दिया है : जैसे स्वकार्य सिद्धि के लिए जाप, अपने ईष्ट की सिद्धि के लिए मंत्र पाठ, संगीत के लिए 'रियाज' आदि कर्म ऐसे कार्य हैं जो केवल आपके हैं, आपके व्यक्तित्व हेतु ही उससे जुड़े हैं, अर्थात अन्य का कोई संबंध उस कार्य से नहीं हो तो वह कार्य गोपनीय अवस्था में संपन्न किया जाना चाहिए। संगीत का अभ्यास गोपनीय होता है क्योंकि अभ्यास का संबंध आम जन से बिल्कुल नहीं है। किन्तु संगीत की प्रस्तुति में सबकी भागीदारी होती है।

— ठीक इसी प्रकार काम, कामकेलि या कामाचार प्रसंग मनुष्य के लिए निहायत ही व्यक्तिगत होते हैं और इसलिए उसे गोपनीय ढ़ंग से जीवन व्यवहार में लाने का प्रावधान दिया गया है।

— आजकल इस नियम का पग-पग पर खंडन हो रहा है। कहानी पढ़ो तो वहां कामाचार शब्दों का विद्रुप वर्णन, दूरदर्शन देखों तो जीवन के गोपनीय दृश्यों पर कैमरे का ठहराव, सेक्स का खुलेआम प्रदर्शन और इन गोपनीय काम प्रसंगों पर भी फिल्मों का निर्माण - क्या है? सुनियोजित ढ़ंग से, जान-बूझकर ऋषियों द्वारा दिये गये इस नियम का खंडन हो रहा है।

— काम प्रसंगों की गोपनीयता खंडित करने का दंश समाज को भोगना पड़ेगा, भोगना पड़ रहा है। यही नहीं, केवल प्रसंगों का ही नहीं, बल्कि कामांगों का प्रदर्शन, काम व्यवहार में आने वाले शब्दों और भावों की गोपनीयता का हरण भी सर्वत्र देखा, सुना जा सकता है।

— अनुशासन हीनता का दंड भुगतना पड़ता है। चाहे जीवन के जिस पड़ाव में वह दंड मिले किन्तु मिलता अवश्य है। जिस प्रकार सूचना तंत्र अनेक बहानों से इसकी गोपनीयता भंग कर रहा है समाज को इसकी क्षति सहनी पड़ेगी। हमें सतर्क होना चाहिए। अगर आपकी संवेदनशीलता में कहीं न कहीं प्रतिघात हो रहा है तो इस प्रसंग पर बातें करनी चाहिए। आप क्यों हैं - मौन श्रोता, मौन द्रष्टा, मौन पाठक!

■ काम प्रसंगों का समुचित, संतुलित अनुशीलन भी जीवन का महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

डॉ० राम कुमार तिवारी
प्रधान संपादक 'वर्तमान संदर्भ'
द्वारा - कृष्णा अवासीय परिसर, अरगोड़ा बाईपास रोड, पो० - डोरंडा, राँची - 834 008
दूरभाष : ०६५१ - २२४६६०३

अद्यप्रभति

सभी जानते हैं कि पत्रिकाओं के प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य क्या है? इसका मुख्य उद्देश्य है - अपने देशकाल, समाज के जनजीवन को लगातार विकसित कर अंधकार से प्रकाश में ले जाना, अपने सीमित दायरे में जी रहे लोगों को खुले मुक्ताकाश से परिचित कराना और अनैतिकता का विरोध करते हुए नैतिकता में जीने की कला सिखाना।

आजादी से पूर्व जब 1826 में हिन्दी का पहला पत्र 'उद्दंड मार्तंड' प्रकाशित हुआ तबसे लेकर 'सरस्वती', 'माधुरी', 'सुधा', 'वीणा', 'प्रभा', 'चांद', 'प्रताप', 'विशाल भारत' आदि पत्रिकाओं ने सचमुच अपने धर्म का निर्वाह करते हुए गहन अंधकार में डूबे देशवासियों को देश से प्रेम करना और उसके लिए मरना, मिटना सिखाया था। उस समय देशवासियों के समक्ष इसी गगनभेदी हुंकार की जरूरत थी, जिससे कि उनके अंदर एक आग जल सके देश के दुश्मनों से लड़ने के लिए।

आजादी के बाद भी ऐसी अनेक पत्रिकाएँ निकलीं, जो अपने लक्ष्य में, उद्देश्य में सफल रहीं। आजादी के बाद देशवासियों को सर्वाधिक जरूरत थी अपनी सांस्कृतिक पहचान की। पांचवे दशक में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में 'कल्पना', 'निकष', 'कृति', 'नयी धारा', आदि ने समाज की इस जरूरत को अपने संपूर्ण जीवनकाल तक पूरा किया। इस काल की अनेक पत्रिकाएँ चाहे वह व्यावसायिक हो या अव्यावसायिक, लगता था मानो वे अपनी पत्रिका धर्म या पत्रकारिता फर्ज से आबद्ध हैं और समर्पित भी।

इस पांचवे दशक के बाद व्यावसायिक और अव्यावसायिक दोनों पत्रिकाओं की संख्या में लगातार वृद्धि होने लगी। पत्रिकाएँ अलग-अलग खेमों में, आंदोलनों में, गुटों में, वादों में विभाजित होने लगीं। तब भी मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृत राय, श्रीपत राय और कमलेश्वर, राजेन्द्र अवस्थी जैसे संपादक/लेखक अपने समाज को संस्कारित और विकसित करने के लिए लगातार कार्य करते रहें। कमलेश्वर और राजेन्द्र अवस्थी की कलम आज भी समाज को संस्कारित करने की चेष्टा करती रहती है; लेकिन वर्तमान माहौल से मर्माहत कमलेश्वर को लिखना पड़ता है - 'संस्कृति के संक्रमण के दौर से आज देश गुजर रहा है।'

यह सच है कि आजादी के बाद कुछ पत्रिकाएँ जिस सांस्कृतिक पहचान की बात उठाकर एक आदर्श स्थापित किये हुए थीं, बाद की अनेक बड़ी-बड़ी पत्रिकाएँ भी उस 'मिशन' को आगे बढ़ाने में असफल रहीं। विविध मानवीय पक्षों में गिरावट, पत्रकारिता के क्षेत्र में मार्यादा का अवमूल्यण, लक्ष्य का भटकाव आदि अनेक कारणों से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है। यहाँ तक कि लेखकों के आदर्श का भी अवमूल्यन देखा जा सकता है। आप निश्चय ही जानते होंगे उन कलमकारों को जो व्यवसायिक पत्रिकाओं को गरियाते भी हैं और उसमें छपने के लिए लार भी टपकाते हैं। एक समूह ऐसा भी है जो लघु पत्रिकाओं को फूटी आँख देखना भी पंसद नहीं करता। अकादमियों की पत्रिकाओं को सफेद हाथी कहा जाना आम बात है। लेकिन यह भी सत्य है और जोरदार शब्दों में कहा जा सकता है, 'हिन्दी की एक भी तथाकथित विख्यात पत्रिका आज के सांस्कृतिक संघर्ष में उस प्रतिबद्धता से शामिल नहीं हैं, जिस तरह लघु पत्रिकाएँ और कुछ अखबार शामिल हैं.... लघु पत्रिकाएँ आज सीना तान के खड़ी हैं जिन्हें लेखक/साहित्यानुरागी अपनी निजी या उधार की पूंजी से निकाल रहे हैं।

ऐसी स्थिति में उन लेखकों से आग्रह है कि मूल पांडुलिपि बड़ी पत्रिकाओं को और छाया प्रति लघु पत्रिकाओं को भेजने की परंपरा में कुछ परिवर्तन कर हमें मानवीय मूल्यों में निरंतर हो रही गिरावट को रोकने में मदद के लिए अपने विचार गर्व से भेजें। लघु पत्रिकाएँ अब वहाँ भी डाक से पहुँचायी जा रही हैं, जहाँ बड़ी पत्रिकाएँ नहीं पहुँच पाती हैं। बड़ी पत्रिकाएँ स्टालों तक सीमित है जबकि लघु पत्रिकाएँ सदस्यता अभियान के कारण दूर दराज के गांवों तक पहुंच रही हैं। हाँ, हमें पुस्तकालयों, वाचनालयों में अभी तक पूरा स्थान नहीं मिल पाया है। निवेदन है कि वे लघु पत्रिकाओं को पाठकों तक पहुँचाने में मदद करें।

साथ ही साथ लघु पत्रिकाओं के प्रकाशकों से भी निवेदन है कि हमें मानवीय जीवन मूल्यों को बचाने के लिए अपने विभिन्न मोर्चों पर सक्रिय रहना है। वर्तमान दौर के सांस्कृतिक संकट को पहचान कर नए से नए लेखकों को प्रोत्साहित करना ही हमारा लक्ष्य है। हम मानदेय के रूप में अपना संकल्प ही दे सकते हैं। जितने भी साथ चलें, हमें तो चलना ही है। 'वर्तमान संदर्भ' सदैव आपके साथ है अपनी नैतिक चेतना के नारे के साथ। स्मरण रहे कि देश भर में निकल रही सवा सौ से अधिक लघु पत्रिकाओं को अपनी जगह केवल डटे रहना, नियमित बने रहना ही तबतक प्रर्याप्त नहीं है, जबतक अपने साथ कोई सार्थक, जनहितकारी लक्ष्य व उद्देश्य लेकर वह सक्रिय न रहें।

'वर्तमान संदर्भ' इन्हीं आशाओं, संकल्पों के साथ सभी पाठकों, लेखकों तथा लघुपत्रिकाओं के प्रकाशकों के लिए नव वर्ष की मंगलकामनाएँ प्रेषित करता है।

-संपादक
संगीता आंनद

कहानी

आत्म–समर्पण

✍ ओम प्रकाश अवस्थी

तलाकनामे का कागज लिये हम दोनों कोर्ट से बाहर निकल कर सड़क पर आ गये थे। रहते हम एक ही घर में थे मगर बोलचाल पिछले छः महीनों से बंद थी। कोई अति आवश्यक संप्रेषण आ पड़ता तो बच्चे उसका माध्यम बन जाते थे।

आज इतने दिनों बाद कोर्ट के गेट पर खड़े हम दो अजनबी की तरह सड़क पर वाहनों का आना जाना देख रहे थे। इंद्रियां जब कोई कार्य छोड़ देती है तो उसके प्रति निष्क्रिय हो जाती है। फिर कभी उसे करना भी चाहे तो झिझक का शिकार हो जाती हैं। शायद यही वजह थी कि अपने दाम्पत्य जीवन की अंतिम संध्या में मैं उससे नहीं बोल सका। वही झिझक आड़े आ गयी। उसके मन में क्या था, ये मैं क्या जानूं।

तबतक एक खाली आटो आता दिखा। उसे मैं रोकने जा ही रहा था कि हाथ दे दिया आरती ने। वह रूका और आरती बच्चों को लेकर उसपर जा बैठी। शायद वह मुझे भी साथ चलने को कहे, यह क्षीण सी आशा मैं संजोता ही रह गया कि धुंआ उड़ाता आटो जा चुका था।

मन खिन्न हो गया। मैं गुस्सा भी नहीं कर सका क्योंकि उसका अधिकार तो मैं छह महीने पहले ही खो चुका था, जब आरती से तलाक लेने के लिए मैंने कोर्ट में दावा दायर किया था। घर तक का पैदल रास्ता करीब आधा घंटे का था। मैं पैदल ही चल पड़ा।

इस छोटे से शहर की सबसे अजीब बात थी कि शरीर के दो हिस्से परस्पर उल्टी दिशा को चल पड़े थे। पैर थे कि आगे बढ़े जा रहे थे मगर दिमाग पीछे की ओर भागता था और पलों में बरसों की यात्रा कर लेता था। उसके इसी सफर का एक पड़ाव था, गुडलक चिल्ड्रेन एकेडमी का आफिस...

इधर आरती और मैं, उधर स्कूल का प्रबन्धक, बीच में बड़ी सी मेज। एक छोटा सा इन्टरव्यू, फिर आरती का हैडमिस्ट्रेस के लिए सेलेक्शन। हम दोनों बहुत खुश! करीब सवा साल पहले का दृश्य आँखों के सामने चलचित्र की तरह कौंध गया। होश आया तो मैं फुटपाथ पर था।

हंसी खुशी बीतते दिन, बीतती रातें, बीतते हफ्ते, बीतते महीने, एक दो तीन... फिर एक अंधा मोड़.. एक दिन मैं अपने आफिस से सीधा उसके स्कूल जा पहुँचा। आफिस में लगी खिड़की के शीशे से देखा, आरती खिलखिला रही थी, हंस-हंस कर बातें कर रही थी। उसके सामने था स्कूल का प्रबंधक राकेश, तीसरा कोई नहीं। अंदर बाते क्या हो रही थीं, सुन न सका, सुनना भी नहीं चाहता था। वह दृश्य मेरी आँखों में चुभने लगा तो मैंने पांव घुमा लिये।

शाम हुई। मैंने घर पर आरती से पूछा, 'उस राकेश के साथ तुम इतना हंस क्यों रही थी?' मेरी बात पर वह खिलखिला पड़ी फिर अचानक गंभीर हो गयी। बोली, 'तो क्या तुम स्कूल आए थे?' मैंने हाँ कर दी तो उसने पूछा, 'फिर मुझसे मिले क्यों नहीं?' उसकी इस बात पर मैं झुंझला पड़ा, 'तुमसे मिलने ही तो गया था पर तुम्हारी हंसी और तुम्हारी बेहयाई देखकर लौट आया।'

'बेहयाई क्या थी?' वह उखड़ गयी तो मैं भी गरमा गया - 'गैर पुरुष से इस तरह अकेले में इठलाना और हंसना, शराफत कहाँ की है। तुम ऐसा करो कि ये नौकरी छोड़ दो।'

वह बोली, 'तुमने तो हद कर दी समीर। बच्चों की फीस बचती है, ऊपर से तनख्वाह, नौकरी में बुराई भी क्या है? तुम बिलाबजह शक न किया करो। मैं ऐसी नहीं हूँ।' और बात खत्म हो गयी।

मुझे लगा कि मैं फिर फुटपाथ पर चलने लगा हूँ। शायद मेरा चलना रूका ही नहीं था। ये हाल्ट पैरों के न थे, ये तो दिमाग के थे और दिमाग फिर अपने सफर पर चल निकला।

'समीर, आज शाम मैं घर नहीं आऊंगी। स्कूल में बच्चों को पिकनिक पर ले जाना है। दोपहर में चली जाऊंगी और कल शाम तक वापस आ जाऊंगी। रागिनी और रोहित को भी लिये जा रही हूँ। तुम्हारे कल तक के खाने का इंतिजाम कर दिया है। फ्रिज से लेकर खा लेना। कपड़े भी धुले रखे हैं।'

'कहाँ जाना है?"

'दुधवा नेशनल पार्क...'

'कौन-कौन जायेगा?'

'चालीस बच्चों का बैच है...'

'उनके साथ सिर्फ तुम्हीं जाओगी?'

'न बाबा, मैं अकेली कैसे संभाल पाऊंगी इतने बच्चों को, राकेश भी जायेंगे।'

'मगर तुम्हें नहीं जाना है..'

'क्यों..?'

'मैंने कहा न, तुम नहीं जाओगी।'

'कैसी बातें करते हो! सारे रिज़र्वेशन हो चुके हैं, अब क्या हो सकता है?'

'तो मैं भी चलूँगा तुम्हारे साथ।' मेरी इस बात पर वह खीझ कर बोली, 'ये क्या! तुमने तो हद ही कर दी।' तो मैं उबल पड़ा, 'हद मैंने नहीं तुमने कर दी जो इस तरह किसी गैर पुरुष के साथ जाने को सोच लिया।'

'पर मैं अकेली कहाँ हूँ। मेरे साथ अपने दो बच्चे, फिर इतने सारे और बच्चे होंगे। नौकरी की है तो ड्यूटी को करनी ही पड़ेगी। मैं नादान नहीं हूँ। दिमाग से शक निकाल दो..' और मेरी अनसुनी करके वह चली गयी।

सहसा लगा कि आँखों के सामने से कुछ ओझल हो गया है तब पता चला कि मैं तो अभी रास्ते में हूँ। अपना घर अभी कुछ दूर है। पैरों ने अन्जाने ही आधे से ज्यादा सफर तय कर लिया था मगर दिमाग उड़ता हुआ एक अंधी गली में जा घुसा, जहाँ से निकलने के लिए किसी दीवार का टूटना जरूरी था चाहे वह अहम् की हो या अभिमान की। और उस गली के मुहाने तक आते-आते....

मेरे वैवाहिक जीवन की चिता सजाने चुपके से स्कूल का वार्षिकोत्सव आ टपका। उस मौके पर मैं भी आमंत्रित था। वहाँ जाने का मेरा मन तो बिल्कुल नहीं था मगर न जाने पर लोग क्या सोचते। और तो और मेरी पत्नी क्या सोचती। मन मार कर वहाँ पहुँचा तो देखा, मुख्य अतिथि की कुर्सी पर जिलाधिकारी सहित तमाम गणमान्य व्यक्ति विराजमान थे। स्टेज पर बच्चों का शो चल रहा था। शो समाप्त हुआ तो बच्चे स्टेज के पिछले पर्दे को हटा कर भीतर चले गये। पण्डाल में न राकेश दिखा, न आरती। मैं शंकित हो उठा। मुझे क्या सुझा कि मैं स्टेज से होता हुआ परदा हटा कर भीतर चला गया। मैंने कुछ देखा तो कान और आँखें दोनों सुलगने लगे।

'आपने भी क्या थर्ड क्लास पुताई करवा दी कि दीवार से लगते ही कपड़े सफेद हो जाते हैं।' आरती अपना चटक लाल सूट झाड़ती हुई बड़बड़ायी तो राकेश ने आगे बढ़कर अपने हाथों से ही उसके कपड़ों की सफेदी उड़ानी शुरू कर दी। पहले कंधा, पीठ, फिर कमर... उधर सफेदी उड़ रही थी इधर मेरे होश।

'अब बस भी करिये, मैं यूँ ही पंडाल में चली जाऊँगी। चूना दिख भी गया तो कौन सी फांसी हो जाएगी।'

'नहीं आरती, तुम मेरे स्कूल की प्रेस्टीज हो। जरा सा रूको, थोड़ा और झाड़ दूं। यहाँ भी चूना है, यहाँ भी सफेदी है.. और मैंने तेजी से पांव घुमा लिये। विपरीत दिशा में होने के कारण वे मुझे देख भी नहीं पाए थे।

घर आते ही उसने पूछा, 'तुम स्कूल क्यों नहीं आए?'

मैंने बुझी सी आवाज़ में कहा, 'मैं गया तो था पर सर दुखने के कारण लौट आया था, तो वह बोली, 'अभी सर दबाये देती हूँ, पहले तुम्हारे लिए खाना बना दूं। मैं और बच्चे तो वहीं से खा आए हैं।' तो मैंने बहुत ही सहज होकर कहा, 'मुझे बिल्कुल भूख नहीं है। मैं भी सोता हूँ, तुम भी सो जाओ। सुबह देखा जायेगा...'

वह तो जल्दी सो गयी थी मगर मैं आंख तक नहीं लगा सका और सारी रात कुढ़ता रहा। वह बड़ी भयानक रात थी। मेरा सबकुछ दग्ध था। आत्मा, शरीर और आंखें, तीनों जल रहे थे। उनमें किसी पर पुरुष के द्वारा मेरी पत्नी को स्पर्श की सलाखे घुस गयी थी। क्रोध और प्रतिशोध उफनाते गये।

कोई पुरुष किसी स्त्री को इस तरह छूने का साहस नहीं कर सकता। नजदीकियाँ पहले दिल में आती है फिर जिस्म में। पुरुष का अपना कोई चरित्र नहीं होता। स्त्री का संयम और सख्ती ही पुरुष के चरित्रवान होने की मजबूरी है। स्पर्श तो बाद की स्टेज है, उसके पहले जाने कितनी स्टेजें आयी होंगी। वह पिकनिक वाली रात... जाने क्या हुआ होगा... ये जो निश्चिंत होकर सो रही है, मेरी पत्नी न होकर नागिन है। इसने मुझे डसा है। मेरे पवित्र प्यार में इसने अपने जहरीले दांत गड़ाये हैं। मुझे इसके जहर के दांत तोड़ने ही होंगे। देखता हूँ, मेरे बिना इसका जीवन कैसे कटता है! इसने मेरा महत्व नहीं समझा तो मैं उसका क्यों समझूँ। तुलसीदास ने गलत नहीं कहा था। ताड़ना वाली बात बाकी तीन के लिए सही हो या नहीं हो पर औरत के बारे में सौ फीसदी सही है। इसे एक गहरा आघात देना जरूरी है फिर देखता हूँ, कैसे नहीं आती मेरी शरण में... और अगले ही दिन मैंने तलाक का दावा ठोंक दिया था।

जब उसे इस बात की खबर मिली तो उसे काठ मार गया। उसकी आक्रामकता और रोष, जाते रहे। उसने मुझे समझाने-बुझाने की तमाम कोशिशें की। वह झुकी तो मुझे लगा मेरी जीत मेरे सामने है। मैं तना रहा, उस पर लांछण पर लांछण लगाता गया और आवेश में आकर मर्यादाओं की हदे इतनी पार कर गया कि वहाँ से लौटना मुश्किल हो गया। मैं भूल बैठा कि सहने की भी एक सीमा होती है।

करीब छः महीने पहले वह मुझसे अंतिम बार बोली थी, 'पुरुष के अत्याचार सहना यदि मेरी किस्मत में नहीं होता तो मैं औरत ही नहीं होती। फिर भी, एक रात का वक्त मैं तुम्हें और देती हूँ। परसों पेशी है। यदि तुमने कल मुकदमा न उठा लिया तो फिर मुझसे कुछ भी कहने का हक तुम हमेशा के लिए खो बैठोगे समीर।' उस वक़्त तो मुझे कोरी धमकी लगी थी, मगर आज...

उसकी इस चेतावनी के बाद भी मैंने उससे उलझने की लाख कोशिशें की मगर हर बार तीर खाली चला गया। मैं उससे बोलने का बहाना तलाशता था मगर उसने कभी मौका ही न दिया। वह यही कह देती, 'तलाक होते ही मैं तुम्हारे घर से चली जाऊँगी, तब तक तो तुम मुझे शांति से रह लेने दो।' और मैं निरुत्तर रह जाता। धीरे-धीरे एकतरफा संवाद भी खत्म होता चला गया और मैं बिल्कुल अकेला हो गया था।

जोश में आकर मैं जिस कश्ती पर सवार हो गया था, क्या पता था कि वह ख़ुद में एक तूफान है। वह बही जा रही थी, मैं डूबता जा रहा था। मुझे बचाने वाला वहां कोई नहीं था। वह झगड़ा भी कितना अनमोल था, वह लड़ाई भी कितनी अमूल्य थी जो मेरे और आरती के बीच बोलचाल कायम किये थे। उससे दिल में जमा पानी बह जाता था और मन हल्का हो जाता था। मगर अब पानी रूका तो सड़ांध आने लगी।

लड़ाई और प्यार, सदैव द्विपक्षीय संबंध होते हैं। उनमें एक पक्ष यदि शून्य हो जाये तो दूसरे को भी देर सवेर शून्य होना ही पड़ता है। दिन ब दिन आरती की खामोशी मुझ पर भारी पड़ती जा रही थी। बाहर से मैं अब भी सख्त था पर भीतर से दरकने लगा था। मैं देख रहा था कि मैं टूट रहा हूँ फिर भी मैं किसी चमत्कार की आशा संजोये बैठा था। मुझे अब भी उम्मीद थी कि वह किसी दिन अपनी पराजय स्वीकार कर लेगी फिर मैं जीवन भर के लिये उससे हार मान लूँगा। मगर ये सब दिवास्वप्न थे जिन्हें मैं अक्सर देखा करता था।

काश, ये मुकदमा अपने आप उठ जाता तो

कितना अच्छा होता। अपने आप इसलिए कि कोई पहल करने की मुझमें हिम्मत न थी फिर यह अंदेशा भी था कि वह मेरी पहल को खारिज न कर दे। वैसी स्थिति मेरे लिए बड़ी अपमानजनक होती। उसकी वार्निंग भी मुझे अच्छी तरह याद है। कोई मध्यस्थ भी न था जो हम दोनों के बीच समझौता करा देता। मैं निरुपाय था।

पेशियां पड़ती गई। हर बार वही सब बातें और वकीलों के चोचले मगर पेशी में कुछ नये किस्म के सवाल आ जुड़े। कोर्ट ने कहा था -

तलाक की पेशकश शौहर की ओर से की गयी है। प्रतिवादी चाहे तो गुजारे का हक मांग सकती है। मिसेज समीर, इस बावत आप को क्या कहना है? आरती का जवाब था, ''मुझे गुजारे की जरूरत नहीं। अगर मैं इतनी कमजोर होती तो उनकी चुनौती को स्वीकार ही नहीं कर पाती।'

अदालत ने फिर पूछा, 'संपत्ति के बंटवारे को लेकर आपको क्या कहना है? तो उसने कहा, 'मैंने पहले भी कह दिया है मुझें उनका कुछ भी नहीं चाहिए।'

'बच्चे भी नहीं...' छोटा सा दिखने वाला एक बहुत बड़ा सवाल उस ऊँची सी कुर्सी से तीर जैसा छूटता हुआ हमारे सामने आ गिरा, जिससे हम दोनों स्तब्ध रह गये थे। अगली पेशी, फिर वह सवाल और वही खामोशी। हम दोनों की खामोशियां पेशी बढ़ाती गयी मगर वह भी कहा तक बढ़ती। अंत तो हर चीज का होता ही है और यही हुआ। अदालत ने साफ कह दिया कि बच्चों की सुपर्दगी इस केस का सबसे अहम मुद्दा है। चूंकि दोनों पक्ष इस बात पर खामोश हैं लिहाजा बच्चों की राय जानने के लिए अगली पेशी में उन्हें पेश किया जाये।

बच्चे मेरे जीवन थे, जीवन की सबसे बड़े खुशी थे मगर उन पर अधिकार को लेकर ये बातें मेरे हक में कोई मायने नहीं रखती थी। आत्मा के फैसले बड़े निष्पक्ष होते हैं, मन उसको माने या न माने मगर मैंने अपने मन को मनमानी करने से जबरन रोक दिया था। उसी दिन से मैंने बच्चों से खुद की दूरी बढ़ा ली थी। न उनसे हंसता, न बोलता, न आंखें मिलाता। उसकी कोई फर्माइश भी पूरी नहीं करता। ये नाटक मुझे जिन्दगी के उस मोड़ पर करना पड़ रहा था जब मेरे उनके सानिध्य की उल्टी गिनती शुरू हो चुकी थी।

मैं आफ़िस से आता तो चोर निगाहों से बच्चों को किसी तरह छुपते-छुपाते देख लेता। वह क्षणिक नेत्रसुख इतना अलौकिक होता है कि मेरी पहाड़ सी वेदना के टुकड़े हो जाते। मेरी इस बेरुखी पर बच्चे मुझसे सहमे-सहमे से रहते मगर फिर भूल जाते। वे मासूम सोचने लगते कि पापा नाराज हैं तो चलो उन्हें मना लें। दोनों प्लान बनाकर मेरे पास आते, इठलाते मचलते और लिपटने लगते मगर मैं पत्थर सा पिघलने का नाम न लेता।

ये खुद को तिल-तिल कर गलाने जैसा था। मेरे सिवा कोई क्या जाने कि ये सब करते मुझपर क्या गुजरती थी। मगर मकसद सिर्फ यही था कि बच्चे मेरा मोह तज दें; उनकी आत्मा से मैं दूर हो जाऊं और वे जिसकी अमानत है; उसी को मिल जायें। स्त्री के तीन पद होते हैं; पुत्री, पत्नी और माता। प्रथम पद तो विवाह के पूर्व का है। शेष दो पदों में आरती एक पद खोने वाली थी। अंतिम पद पूरी तरह उसके अधिकार में रह जाये, जिन्दगी गुजारने को उसे भी तो कुछ चाहिए। मेरी सारी इच्छाएँ दफन हो चुकी थीं। अब एक की कामना शेष थी कि बच्चों को जब दो में किसी एक का चुनाव करने की नौबत आये तो वे उसी को चुन लें जिसने उन्हें पैदा किया था।

आज अदालत ने किसी एक को चुनने की बात जब बच्चों से कही तो वे कुछ समझ ही नहीं पाये। पांच साल का रोहित कभी मुझे देखता कभी अपनी माँ को। तो कभी वह जज को देखकर मुस्करा देता। मगर रागिनी दस वर्ष की थी। न्याय की बेदी से सटे तीन खंडों में, एक वादी, दूसरे प्रतिवादी और बीच वाले खंड में रागिनी वकील के साथ खड़ी थी। जब उससे ये सवाल पूछा जाता तो वह कभी एक ओर जाकर माँ की साड़ी पकड़ लेती तो कभी घूम कर मेरी ओर आ जाती और मेरी उंगली पकड़ लेती। दाईं और बाईं ओर का खून जमा रहा, मगर बीच का खून दौड़ता रहा कभी इधर, कभी उधर।

अदालत में सन्नाटा छा गया था। जज साहब ने यह सवाल आखिरी बार मेरी बेटी से पूछा तो उसने सर झुका लिया मगर रोहित दौड़ता हुआ उनकी कुर्सी तक जा पहुँचा और बेखौफ बोला, 'अंकल जी, तुम्हारा घर कहाँ है? मैं तुम्हारे साथ रहूँगा।' और जज साहब मुस्करा पड़े थे। कोर्ट जब उस अदने से सवाल का जवाब पाने में असमर्थ रही

तो फैसला दे दिया, 'बच्चे आजाद हैं, जिसके साथ चाहें रह सकते हैं। इस बात पर दोनों पक्षों को कोई एतराज हो तो बता दें।'

मगर पक्ष और विपक्ष, दोनों इस बात पर निष्पक्ष रहे थे और जजमेंट हो चुका था।

यही था वह वर्षों का सफर, जिसे पूरा करते दिमाग को आधा घंटा भी न लगा था मगर घर अब भी मुझसे बीस-तीस कदम दूर रह गया था। दिल पूरी तरह धड़कने लगा, जैसे वह कलेजा फाड़ कर अभी सामने आ गिरेगा मगर ऐसा कुछ न हुआ और अपने ही घर में घुसते हुए मेरे पांव ठंडे पड़ने लगे।

मैंने देखा, एक ब्रीफकेस और दो एयरबैग तैयार रखे थे। सामने मेज पर घर की दूसरी चाबियों का वह गुच्छा भी था जिसे अभी तक आरती अपने पास रखती आयी थी। वह खामोश और सर झुकाए खड़ी थी। मैं भी चुपचाप बेड पर बैठ गया। दोनों बच्चे मेरे पास बढ़ आये और मेरे गले में अपनी छोटी-छोटी बाहें डालकर झूल गये। मेरा मन भर आया कि मैं अभी अपने कलेजों को चिपटा लूं, और जी भर कर प्यार कर लू मगर विदाई की उस सिसकती बेला में मैं कुछ भी ऐसा नहीं कर सका। बल्कि डर गया था, कि कहीं बच्चों का मासूम मन मेरी ओर लुढक न आये। लुटा तो मैं भी बहुत था पर एक लुटी हुई औरत के जिस्म से उसकी दो खूबसूरत आत्माओं को चुरा लेने का गुनाह अब मेरे जमीर को बर्दाश्त न था।

तब तक मेरे कानों में पिघले शीशे जैसी आवाज उतरती चल गयी – 'मैं जा रही हूँ।' इतना कहकर उसकी झुकी निगाह उठ कर बच्चों पर जा पहुँची तो दोनों बच्चे मुझे छोड़ कर उसके पास चले गये। वेदना के उस क्लाईमेक्स में मुझे राहत सी मिल गयी। सामान उठा कर वह आगे बढ़ी तो लगा, मैं अभी चटक जाऊंगा। मेरे दो फांक हो जाएंगे। सहसा मुंह से निकल गया, अभी रूक जाओ... और इतना कहते ही रूलाई मुंह तक आ गयी तो मैं उसे छुपाता अंदर को भाग गया। कुछ देर निरुद्देश्य सा पूरे घर में घूमता रहा फिर लौट आया और बड़ी हिम्मत करके बोला, 'तुम लोग कुछ खा पी लो फिर जाना। मैं होटल से खाना ले आता हूँ।' इतना सुनते ही रोहित मचल उठा, 'छोले भटूरे लाना पापा, मुझे भूख लगी है।' तो आरती छूटते ही बोल पड़ी, कोई जरूरत नहीं, मैं रास्ते में कुछ खिला दूंगी। रोहित, थोड़ा सब्र करो, चार घंटे में अपने नाना के यहाँ पहुँच जाओगे, वहीं खाना।' तो मैं क्षुब्ध हो उठा, 'इतनी कठोर मत बनो आरती, बच्चे सुबह का एक-एक पराठा खाए हुए हैं और तुमने तो वह भी नहीं खाया था।'

वह बिफर पड़ी, 'तुम आज कठोरता की बातें करते हो! तुम्हारे जितना कठोर तो मैंने पहले कभी नहीं देखा। पहले सारे शिष्टाचार तोड़े, फिर प्यार तोड़ा, आखिर में मुझे ही तोड़ डाला फिर कहते हो, कठोर न बनो।'

उसकी बात सही थी मगर मैं भी बिल्कुल निराधार न था। मैंने भी उसे बहुत चाहा था। उसका प्यार ही मेरी पूंजी थी। जब मुझे अपना धन लुटता दिखा तो मेरा भी असंतुलित हो जाना बहुत अस्वाभाविक न था। मैंने भी अपने मन की बात कह डाली, 'तुम प्यार और शिष्टाचार की बात करती हो तो सुनो, मैं भी एक पति था, और मेरी भी एक मर्यादा थी। जमाना कितना भी बदल जाए पर न रिश्ते बदल पायेंगे न रसूक, जिसके तले आज भी रूठने का हक पति को और मनाने का हक पत्नी को।

वह चेतवानी जो तुमने मुझे दी थी, वह कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं थी जिसे लांघना असंभव था। तुमने तो मुझसे बोलना ही छोड़ दिया। उसके बाद तुम एक बार भी न कह सकी कि जो हुआ उसे जाने दो। तुम्हारे बिना मैं एक पल भी नहीं रह पाऊंगी। मुझे माफ कर दो। तुम लौट कर एक बार भी नहीं झुक सकी तो पति होकर क्या मैं तुम्हारे पांव पर गिरता। मैं तो रात दिन तुम्हारे ही ख्यालों में रहता था और तुम ही मुझसे बेखबर हो गयी।

आरती सब कुछ सुनती रही फिर उसने कहा, 'छोड़ो, अब तो ये सब बीती बातें हो गयीं। जब सब कुछ हो बीता तो उसे मेटना अब किसी के वश में नहीं। मैं चलती हूँ।' और उसने कदम बढ़ा दिये। 'अच्छा थोड़ा रूको।' इतना कहकर मैं फिर अंदर चला गया। मैं पूरे घर में चलता रहा, कुछ उठाता रहा कुछ रखता रहा और बहती आंखें सुखाता रहा और कुछ देर में ढ़ेर सी चीजे लिये वापस आ गया।

ये लो अपना ब्रश, कल मंजन कैसे करोगी। ये तुम्हारा साबुन, ये स्लीपर और तुम्हारे कपड़े पालीथीन में रख लाया हूँ। बाथरूम में तुम सुबह इन्हें गीला छोड़ आयी थी। तुम्हारे तकिया के नीचे यह रुमाल मिला इसे भी लेती जाओ। ये लिपिस्टिक भी वहीं थी। उसे छोड़ जाओ कभी रात को...' आगे के शब्द मेरे

गले में ही अटक गये। आंखे भर आयी तो घूमकर मैंने उसकी ओर पीठ कर ली।

दिमाग भी बहकता हुआ बेवक्त अतीत में चला गया था। वह भी मेरी ही जिन्दगी की हिस्सा था, जब आरती रात सोते में मेरे होंठों पर अपनी लिपिस्टिक लगा दिया करती थी। सुबह मैं जगता तो मुझे शीशा दिखाती। वे क्रीड़ाएं थीं जिन्हें हम दोनों का प्यार खेला करता था। मैं उन्हीं में डूबने लगा तो अंदर से कोई बोल पड़ा, 'ये क्या! तुम टूटने लगे। वह क्या सोचेगी? मन तो शरीर का आंगन है जहाँ भावनाएँ नंगी घूमती हैं। तुमने उसे बाहर क्यों निकलने दिया। यही स्वाभिमान है तुम्हारा!'

मैंने उन मधुर स्मृतियों को वर्तमान में लाकर बलपूर्वक पटक दिया और स्वर में कठोरता लाता हुआ बोला, 'ठहरो, तुम्हारी कुछ चीजें मेरी अलमारी में हैं। अचानक याद आ गयी तो उन्हें भी ले जाओ। ये मत समझना कि मैं तुम्हें रोकता हूँ। तुम जाओ, शौक से जाओ।' इतना कहते-कहते मैंने अलमारी खोलकर एक फोटो और मंगलसूत्र निकालकर उसे देते हुए कहा, 'ये कभी टूट गया था। तुमने मुझे जुड़वाने को दिया था। न वह जुड़ सका, न मैं जुड़वा सका तो ऐसे ही लेती जाओ। और हाँ, देखो ये वही फोटो है जिसे हम दोनों ने कभी स्टूडियों में जाकर खिंचवाया था। तब बच्चे भी न थे, बस हम दोनों थे। अब कोई न होगा। मैं.. सिर्फ मैं रह जाऊँगा... हाँ तो इस एक फोटो के दो हिस्से हैं। अपना वाला फाड़ कर रख लो... मेरा वाला कहीं फाड़ कर फेंक देना।'

'तुम्हारी मर्जी... जैसा जी में आए वैसा...' इतना कहते-कहते मैं फिर हार गया था। दिमाग ने फिर आवारगी की थी। वह मंगलसूत्र से होता हुआ किसी गुजरी रात के उन गुलाबी पलों तक जा पहुँचा जब हम दोनों के प्रगाढ़ आलिंगन ने उस बेचारे को दो दिलों के बीच मसल कर रख दिया था। वह भी एक ज्वार था जो उतरते-उतरते हमें निढ़ाल कर गया था और मंगलसूत्र को तोड़ गया था।

तो लगा कि यह जिन्दगी भी एक सागर है जिसमें ज्वार भाटे आते ही रहते हैं। भावावेश में लहरें उठती हुई आसमान चूमने लगती हैं तो सागरतट डूब जाता है और जब लौटती हैं तो धरातल का यथार्थ फिर दिखने लगता है। मगर तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। आवेश उतरते-उतरते जीवन को बुरी तरह थका देता है, हरा देता है और चूर-चूर कर डालता है। कुछ वैसी ही थकान मुझे तोड़े डाल रही थी तो होंठ फफकने पर अमादा हो गये। मैं उन्हें रूमाल से दबाये फिर अंदर आ गया।

कुछ देर बाद जब मैं लौटा तो बहुत सहेज कर रखी गयी कुछ चिट्ठियों का बंडल लेता आया। ये वही चिट्ठियाँ थीं जिन्हें कभी मायके में रहकर आरती ने मुझे लिखा था। जब उससे बोलचाल बंद हुई तो उस मनहूसियत में यें खत मेरे बहुत काम आये थे। उसने वह बंडल मेरे हाथों से ले लिया, शायद वह उसे पहचान गयी थी। मैंने अपनी जेब उलट दी, पर्स खाली कर दिया और जितने कुछ रुपये पैसे थे उन्हें रोहित की जेब में डाल दिया। आरती बोल पड़ी, 'रोहित रुपये वापस रख दो। मुझे इनका एक भी पैसा नहीं चाहिए..' उसकी यह बात मुझसे सहन नहीं हो सकी मैं गिड़गिड़ा कर बोला, 'मुझपर इतना जुल्म न करो आरती! आज के बाद मैं अपने बच्चों क्या दे पाऊंगा? उसे रुपये ले लेने दो।' मेरा वाक्य पूरा होते ही वह घर की चौखट पार कर गयी। उसके पीछे रोहित भी निकल गया – मगर रागिनी अंदर रह गयी और चिल्ला पड़ी, 'मम्मी, मम्मी, मेरी बात तो सुन लो।'

आरती के कदम ठिठक गये। वह आश्चर्य से बोली, 'तुम क्या कहना चाहती हो? क्या तुम यही रहने को...' मगर वह बीच में बोल पड़ी, 'ऐसा न कहो मम्मी, मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगी, मगर कुछ दिन मुझे यहाँ रह जाने दो।'

'कुछ दिन क्यों, तुम हमेशा रहो। मैं कुछ भी नहीं कहती, कह भी नहीं सकती, जहां जी में आये वहाँ...' लगा कि इतना कहते-कहते आरती रो देगी, मगर उससे पहले ही बेटी की आँखें टपकने लगी। उसने कहा, 'मम्मी, मेरी बात तो समझो। देखो, पापा को कुछ करना नहीं आता। न खाना बनाना न कपड़े धोना। याद करो, जब तुम्हारी उनसे लड़ाई हुई थी, तुम अपना खाना अलग बनाने लगी थीं तो पापा तीन दिन भूखे रहे थे। न खाना बना सके न होटल जा सके, तभी तो उनका खाना मैं बनाने लगी थी। पापा सुबह के एक पराठा खाए हैं। हमलोग चले जाएगें तो वे भूखे ही सो जाएंगे। कल भी नहीं खाएंगे, परसों भी नहीं खाएंगे.... बाद में जाने क्या होगा। उनके सारे कपड़े गंदे हैं। कल वे क्या पहन कर आफ़िस जाएंगे। मैं उन्हें सबकुछ करना सिखा दूंगी। तबतक तुम जाओ मम्मी, मगर बाद में आकर मुझे जरूर ले

जाना। तुम्हारे बिना मुझे अच्छा नहीं लगेगा।' इतना कहते-कहते वह सिसकने लगी थी।

यह दृश्य देखकर आरती ठगी सी खड़ी रह गयी। वह बड़े असमंजस में थी, मगर मैं मन ही मन में डूबता जा रहा था कि उस नन्हें से दिल में मेरे लिए कितना अथाह प्यार है। मैंने अपने मिथ्या अभिमान के लिए उस बेटी को नहीं उसकी जड़ तक को सुखा डाला था। जीवन भर परित्यक्ता की पुत्री कही जायेगी। इस पुरूष प्रधान समाज में बिना पिता के जीवन काटना उसके लिए कितना कठिन होगा, यह बात मैं भली भाँति समझता था। मेरे अपराध की काली छाया जितनी आरती पर पड़ी थी, उससे कहीं ज्यादा मेरी बेटी पर, फिर भी उस निष्पाप ने मुझपर माँ जैसा प्यार उड़ेल दिया। मुझे लगा, अभिमान से बहुत बड़ा है कर्त्तव्य और कर्त्तव्य से बहुत बड़ा है प्रेम। यह ढाई अक्षर का छोटा सा शब्द कितना विराट् है, इसे मेरी बच्ची ने अपना मुँह खोल कर दिखा दिया जिसके सामने मेरा अस्तित्त्व भुनगा जैसा बन गया था।

मेरी आत्मा तड़प उठी कि मुझे मेरे अंश के लिए कुछ न कुछ करना चाहिए और मैं आरती के पास जाकर अनुनय करता हुआ बोला, 'मेरी बच्ची ने मेरे स्वाभिमान की कलई खोल दी है। अब वह मुझपर बहुत भारी पड़ने लगा है। उसे तुम ले लो और मेरा खोया हुआ मुझे वापस कर दो, मेरा आत्मसमर्पण स्वीकार कर लो आरती।'

मगर वह पथरायी निगाहों से मुझे देखती रह गयी। उसने मुँह से एक शब्द तक नहीं निकाला तो मुझसे रहा नहीं गया और मैं याचना भाव से बोला, 'ये सच है कि मेरा अपराध अक्षम्य है। ये भी सच है कि मांफी मांगने का अधिकार भी मैं खो चुका हूँ। फिर भी यदि हो सके तो एक बार मुझे माफ करके देख लो आरती। तुम मुझे जीवन भर के लिए मन से उतार देना मगर मुझे स्वयं को अपनी नजरों में चढ़ने का अधिकार मेरे पास बस एक बार और रह जाने दो जिसके तले मैं जीवन भर तुम्हें एकतरफा प्यार करता रह सकूँ। यह दण्ड तुम मुझे दे दो, प्रायश्चित तो मैं कर ही लूँगा।'

उसके होंठ हिले और गहरा विषाद मेरे मन की गहराईयों में उतरता चला गया -

'छोड़ो इन बातों को, इनका कारवां हमारे जीवन पथ पर पीछे छूट चुका है। वह पेड़ जिसके तले हम थे, उस हद तक सूख चुका है कि अब उसे लाख पानी दो, वह हरा नहीं हो सकता। फूल-पत्तियाँ बांट लो। तुम बेटी ले लो, मैं बेटा लिए जाती हूँ।' इतना कहकर उसने अपने कदम बढ़ा दिये तो मैंने उसकी बाँह पकड़ ली। मैंने दृढ़ता से कहा, 'जाती ही हो बेटी को भी लेती जाओ। मेरी बिटिया... जाओ ...तुम भी जाओ... अपनी मम्मी और रोहित का ख्याल रखना। मैं बड़ा मजबूर हूँ बेटी, तुम्हें अपने पास नहीं रख सकता। तुम मेरी चिंता न करना। मुझे न खाने की जरूरत होगी न पहनने की, अब मुझे भी चले जाना है।' तब तक रागिनी बोल पड़ी, 'तो मुझे भी वहीं ले चलो पापा, जहाँ आप रहोगे, वहीं मैं भी रह लूँगी।'

'न बेटी... ये तुम क्या कह रही हो! वहाँ मैं तुम्हें कभी नहीं ले जा सकता, जहां जाने का मैंने मन बना लिया है। भगवान मेरी उम्र तीनों में बांट दे, तुम्हें अभी बहुत दिन जीना है। और हाँ आरती, इतना जरूर याद रखना कि रागिनी कभी जिद भी करे तो तुम उसे यहाँ मत लाना। यहाँ तुम्हें कुछ भी न मिलेगा... मेरी राख भी...

बात पूरी होते-होते वह बिजली जैसी मेरे सामने आ गई और मेरे होठों को अपनी हथेली से छाप लिया। फिर सिसकती हुई बोली, 'ऐसी अशुभ बातें तुम मुँह पर लाये कैसे! कोर्ट में भी मैंने तुम्हारे विरूद्ध एक शब्द तक नहीं कहा। मैंने तुम्हारा मन भी रखा और मान भी। मेरा मंगलसूत्र टूटा ही था, वह गायब तो नहीं हुआ। तुम्हारा जीवन मेरे लिए अब भी अनमोल है। परित्याग कोई अंत नहीं, वह तो सीता का भी हुआ था। उन्हें भी राम वापस कहां मिले थे पर तुम मुझे वैधव्य का दंड देने क्यों चले हो?'

इतना कहते-कहते वह मुझसे लिपट गई और मेरे कंधे पर अपना सर छुपाए फूट कर रोने लगी। उसको रोता देख कर बच्चे भी मुझसे लिपट कर रोने लगे।

146, हनुमान कालोनी, सूफीपुरा
बहराइच - 271118 (उ० प्र०)

'वर्तमान संदर्भ' के सदस्यों से आग्रह है कि जिनकी सदस्यता शुल्क समाप्त हो गयी है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करवा लें ।

खुशबू

✍ डॉ0 अमिताभ शंकर राय चौधरी

'बाबूजी', - आपको परेशानी किस बात की है ? मकान, उसका मोह है ? मैं हू-बहू वैसा यहाँ बनवा दूंगा।' प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े दिव्यांशु ने खिड़की से कहा।

'अरे नहीं.. नहीं बब्बू, अब तो जीवन में मोह केवल इसका ही है....' विष्णुप्रसाद ने संगीत की ओर इशारा किया। संगीत दादी को मना रहा था, जैसे रूठे हुए घटक को सरकारी दल मनाता है - 'बार-बार आपलोग चली क्यों जाती हैं ? मुझे यहाँ अच्छा नहीं लगता। मुझे भी साथ ले चलिए। मैं यहाँ नहीं रहता..' उसका गला जैसे भर आया।

इतने में ट्रेन ने सीटी दी। संगीत की माँ ने सास-ससुर का पैर छुआ और उसका हाथ पकड़ कर जल्दी से दरवाजे के बाहर आ गयी। लालबत्ती आँखें भींच कर खड़ी थी। हरी बत्ती मुस्करा रही थी। चहल-पहल! भागदौड़! 'चाय गरम!' बोतलों की ठनठनाहट! लोग गाड़ी से उतरने लगे। ट्रेन चलने लगी, हाथ हिलने लगे।

सुषमा ने सास से कहा, 'घर पहुँचकर कल ही फोन कर दीजिएगा।'

दादी ने सिर हिलाया, सिर से पल्लू खिसक गया। लगी संभालने। देखा, विष्णु प्रसाद ऐनक को साफ कर रहे हैं। परंतु शीशा तो साफ ही था। आँखें जो छलक आयीं थी। क्या करते बेचारे? वहाँ उनके मरीज हैं। इस उम्र में वैसे तो उन्हें प्रैक्टिस करने की कोई आवश्यकता तो है नहीं, लड़की को अच्छा घर-वर मिल गया। वह सुखी है, लड़का यहाँ अच्छे पद पर प्रतिष्ठित है, परंतु मरीज उनको छोड़े तो न!

सालों पहले लाल बनारसी, खूब गहने और इतना सिंदूर लगाकर नयी दुलहिन जो कभी डॉ० विष्णु प्रसाद को दिखाने आतीं थी, आज वही अपने पोते -पोतियों को लेकर आतीं हैं।

'देखिए न डाक्टर साहब, आज तीन दिन से पिंटू का बुखार उतरने का नाम ही नहीं ले रहा है।'

'ठंडे पानी से इसका सर धुलवा दिया था न...?'

'अरे इसकी माँ कह रही थी, मैंने ही मना कर दिया। कहीं सर्दी बैठ जाती तो? पता नहीं, आजकल की लड़कियों को...'

'बहू ठीक कह रही थी।' विष्णु प्रसाद अपने मरीजों को डांट भी देते। इतना अपनत्व है उनका सबके साथ।

पत्नी की तरफ देखकर उन्होंने कहा, 'अब तो बस बब्बू के पास ही रहने का जी चाहता है, संगीत के साथ खेलूँ... उसे पढ़ाऊँ...'

सुधा भी यही चाहती है। बेचारी सुषमा कितना कहती है, 'अम्मा, आप और बाबूजी यहाँ क्यों नहीं रहते? उस मकान का भी कोई इंतजाम हो जायेगा।' आजकल की बहुयें तो सास ससुर को अपना बोझ समझती हैं, पास रहने के लिए इतनी मिन्नत कौन करता है? भाग से ऐसी बहू मिली है, और ये हैं कि...

क्या डॉ० विष्णु प्रसाद भी यही नहीं चाहते? उनका मन उदास हो गया। इस तरह एक जगह से दूसरी जगह जिसे कहा जाय बोरिया बिस्तर बाँध कर चले जाना - क्या इतना आसान है? रात जाग जाग कर मरीज देखकर - अपने पसीने की कमाई से एक-एक ईंट जोड़कर जिस मकान को उन्होंने बनवाया था - क्या वह उनकी अपनी संतान के भी काम नहीं आयेगा? खैर, इसकी भी उन्हें चिंता नहीं है। परन्तु उन्हें फिक्र है तो अपनी किताबों की, तीन चार हजार से ऊपर पुस्तकें - चिकित्सा विज्ञान से लेकर कला साहित्य तक, इतना अच्छा संग्रह कहाँ मिलता है? कितने प्यार से वे हर किताब के एक-एक पन्ने को पलटते थे, मानो गुलाब की पंखुड़ियों को छू रहें हो। नयी किताब की खूशबू! आह!!

पर दिव्यांशु ने तो इनके लिए भी कहा था, 'बाबूजी, अगर आप मेरी बात न माने तो मैं किसी दिन घर

आकर सारी की सारी किताबें एक ट्रक में लादकर यहाँ से ले जाऊँगा, फिर देखता हूँ आप कैसे नहीं जाते..'

'अरे पगले, तुझसे दूर रहना क्या मुझे अच्छा लगता है? अनायास चलती ट्रेन में विष्णु प्रसाद के मुँह से ये शब्द निकल पड़े।

'आप किससे बात कर रहे हैं...?' सुधा हंसने लगी। विष्णु प्रसाद खिड़की से बाहर देखने लगे। दूर से कोई रोशनी दौड़ती-दौड़ती पास आती है, फिर दौड़ती-दौड़ती दूर चली जाती है। उनका मन उदास हो जाता है। आज संगीत ने उनसे बात नहीं की। वह रूठा हुआ है, दोपहर में कहानी सुनने भी नहीं आया।

उधर घर पहुंचते ही संगीत दादाजी के कमरे में जाकर बैठ गया, चुपचाप! आज दिनभर उसने दादाजी से बात नहीं की थी। ट्रेन में केवल चरण स्पर्श कर दादी के पास ही बैठा रहा। उसे समझ मे नहीं आता दादा, दादी आखिर बार-बार चले क्यों जाते हैं? यहाँ क्यों नहीं रह जाते? मेरे पिताजी और मम्मी तो मेरे पास रहते हैं, तो फिर दादा, दादी अपने बेटे के पास क्यों नहीं रहते?

आज उसने कहानी भी नहीं सुनी थी। दोपहर के भोजन के बाद दादाजी उसे बुला रहे थे, 'गीत मेरे पास आओ, एक अच्छी कहानी याद आयी है।'

वह पास फटका तक नहीं, 'मम्मी के पास सोऊँगा...' कहकर सुषमा के कमरे में चला गया।

सुषमा रास्ते के लिए खाना बनाने में व्यस्त थी, सुधा भी हाथ बंटा रही थी, सुषमा ने टोका, 'अम्मा, आप क्यों परेशान होती हैं? जरा आराम कर लीजिए फिर ट्रेन का सफर भी तो हैं..'

'घर पहुँचकर बस, दिनभर निठल्ले बैठे ही तो रहना है।' सुधा उदास हो गयीं, जाने कब मन की लालसा पूरी होगी, कब बहू बेटे के पास रहूँगी?

दिव्यांशु ने घर पहुँचकर चाय पी, फिर बेटे को बुलाया, 'गीत टी० वी० में कार्टून आ रहा है, देखना नहीं है?' सोचा जरा गीत का मन बहल जाएगा।

'नहीं..' संगीत ने उत्तर दिया।

सुषमा सोची, 'जाने भी दो। अभी मन उदास है, रात के भोजन के बाद अपने पास लेकर सुलाऊँगी। रात खत्म तो उदासी खत्म।' पर रात के खाने के बाद भी संगीत दादाजी के कमरे में ही चला गया।

दिव्यांशु ने आँखों ही आँखों में पूछ लिया, 'माजरा क्या है?'

सुषमा चुपके-चुपके विष्णुप्रसाद के कमरे में गयी तो देखा दादा दादी के दोनों तकियों को दोनों तरफ लिए संगीत लेटा है।

'क्यों गीत, आज तो दादा दादी नहीं हैं, हमारे साथ सोने नहीं आयेगा?'

'मैं यहीं सोऊँगा...'

'अकेले..? डर नहीं लगेगा..?'

'नहीं, मैं अकेले कहां हूँ? दादा दादी की खुशबू जो है मेरे पास..?'

'खुशबू..?' सुषमा ने अचंभे से पूछा।

दोनों तकियों में अपना मुँह छुपाकर गीत ने उत्तर दिया, 'इनमें है - दादा दादी की खुशबू...'

सी 26/35-40 रामकटोरा
वाराणसी - 221 001

नीलकंठ

✍ विजय

पुलिस मुख्यालय में जिस दिन प्रशिक्षण के उपरांत नियुक्ति पर वह पहुँची, आई जी माथुर एक लेडी डी एस पी को पाकर बहुत खुश हुए, 'गुड! पर लेडी होने से काम मामूली मिले यह जरूरी नहीं है। पुरूष से होड़ लगानी होगी।' दोनों को मिलाने आया प्रशासनिक अधिकारी लौट गया था।

'सर!' मीरा यादव ने पूर्ण विश्वास के साथ कहा था। आई० जी० ने इन्टरकाम पर बात कर उसे एस एस पी वर्मा के पास अर्दली के साथ भेज दिया था। वर्मा जी ने स्वागत तो तपाक से किया मगर होठों पर व्यंग्य था – 'क्यों सीधे आप ओल्डमैन के पास पहुँच गयी। ही हैज प्लेस्ड यू इन रूरल फील्ड। अब मैं कुछ नहीं कर सकूँगा।'

'ठीक है सर! मैं कोशिश करूँगी कि उनकी और आप लोगों की उम्मीद पूरी कर सकूं। वैसे मुझे वहां प्रशासनिक अधिकारी लांबा साहब ले गए थे। खुद नहीं गयी थी।'

हंसा वर्मा, 'अभी गाँव ट्रेन से देखा होगा मिस यादव! किताबों में पढ़ा होगा कि गाँववाले मेहमानों पर जान छिड़कते हैं। पड़ोसी के लिए जान दे देते हैं और गांव की हर लड़की बहन-बेटी होती है, पर सच्चाई यह है कि पड़ोसी का खेत जलाना धर्म, कत्ल की साजिश कर्म और अपनापन शर्म की बात है वहाँ! ...खेत-खलिहानों में फसल ही नहीं, लाशे भी उगती हैं।'

'मुझे मालूम है सर! साइंस और क्राइम अब प्रोपेशनेट रेट पर चलते हैं, दोनों में प्रतियोगिता है। साइंस का इस्तेमाल शहर करता है और क्राइम का शिकार ग्रामीण होता है।'

'आप समझती है कि गाँववाले सीधे-सादे होते हैं?'

'नहीं सर...' मीरा को लगा कि एस० एस० पी० कृष्णकांत वर्मा के स्वर में गुस्सा है। वह अपनी बात समझाती है, 'गांव का आदमी चालाक कम पर जाहिल ज्यादा होता है। वह हल्ला करता है तो उसकी सीधी वजह होती है। वह कातिल खरीदता नहीं है। काम्पलेक्सिटी शहर की जायदाद है..।'

वर्मा जी की हंसी तिरछी थी मानों कह रहे हों, अभी कुंवारी हो प्रसव वेदना से गुजरोगी तो समझोगी।

वर्मा का अर्दली उसे एक छोटे आकार के कमरे में छोड़ आता है। ढीले हाथों से इंसपेक्टर मदन सिंह, ए एस आई मनीराम और कई सिपाही सैल्यूट दागते हैं। उनकी आंखों में हंसी और होंठ तिरछे थे।

क्लर्क ज्वाइनिंग के लिए जरूरी कागजात उसके सामने लाकर रख जाता है। कमरे के बाहर फुसफुसाहटें थीं... छोकड़ी है अभी! किसी ने सुरती मलकर हथेली थपथपाई थी।

मीरा को प्रशिक्षण के दौरान मिली एस पी सुधा बर्नवाल के शब्द याद आए... औरत होने की पहचान उसके मातहत ही पहले करवाते हैं – दया करते, हंसी उड़ाते हुए और बड़े उसकी असफलता पर हमदर्दी जताकर।

मीरा घंटी बजाती है। टोपी संभालता हुआ अर्दली आता है, 'जी साब...'

'जी मैडम, साहब नहीं ! पानी लाओ..'

अर्दली गिलास उठाता है, मीरा दहाड़ती है, 'तुम पुलिस में काम करते हो या नाली साफ करते हो..! हाथ देखे हैं अपने...'

क्लर्क को बुलाने के लिए दो घंटी बजाती है मीरा। उसके आने पर इंस्पेक्टर मदन और सब इंस्पेक्टर मनीराम को हाजिर करने का हुक्म देती है।

दोनों कुछ सकपकाए से आते हैं। मीरा मनीराम को झिड़कती है, 'चौकीदार और सिपाही का फर्क जानते हैं?'

'जी - ई,' मनीराम घबराता है। इंस्पेक्टर मदन सिंह खामोश रहता है। मनीराम को बाहर खड़ा रहने का आदेश देकर मीरा मदनसिंह को कुर्सी पर बैठने का इशारा करती है। मीरा के तेवर अब सहज थे, 'देखिए इंस्पेक्टर मदन, आप इस विंग के अफसर हैं, मातहतों को निडर होकर दुरुस्त रखिए। कल से वर्दी, बूट, बैल्ट का निरीक्षण कोई हेड कांस्टेबुल करेगा और मनीराम आफिस की हर चीज साफ और सही है का जिम्मेदार होगा। आप खुद को फ्री रखें जिससे जरूरत पड़ने पर फ़ाईलों पर आपसे मशवरा हो सके।'

दूसरे दिन जब मीरा आफिस में घुसी तो कड़क सैल्यूट इंतिजार कर रहे थे। मेज पर ढका हुआ पानी रखा था। क्लर्क फ़ाइल फोल्डरों को तरतीब से रख चुका था। उसके बैठते ही अर्दली हाज़िर था। मीरा ने देखा कि इसके हाथों में सुरती के दाग नहीं थे। मीरा ने अर्दली मांगेराम की पीठ थपथपाते हुए शाबाशी दी। सामने आई फाईल का पूरा अध्ययन कर दोपहर जीप से मदन सिंह और हेड कांस्टेबुल रशीद के साथ वह सयाना चौकी पहुँच गई। चौकी में हड़बड़ी मच गई। ए० एस० आई० चिरौंजी सिंह हाथ बांधे खड़ा हो गया। मदन सिंह उसके कान में फुसफुसा चुका था, 'बहुत कड़क अफसर है ।

ए० एस० आई० को लेकर मीरा बदन सिंह कुम्हार के घर गई। उसके बेटे को पुचकार कर पूछा- 'क्यों भाई तुमने देखा था उस आदमी को जिसने तुम्हारे बापू को मारा था?'

दस वर्ष का लड़का आँखें झुका लेता है। कच्चे आंगन से बाहर आती अधेड़ औरत बच्चे को पीछे कर लेती है..., नईं, इसने किसी को नहीं देखा।'

मीरा औरत के उदास और सहमे हुए चेहरे को पढ़ती है, फिर समझाती है, 'डरो नहीं! बच्चा जैसे ही नाम बताएगा, हम उस आदमी को पकड़ लेंगे।'

औरत की सहमी आँखों में घृणा उभरी थी, वह बच्चे को लेकर अंदर चली गई। मीरा चिरौंजी सिंह से पूछती है - 'यह औरत बच्चे को नाम क्यों नहीं बताने देती है?'

'डरती है मैडम, मुजरिमों से। नाम बताते ही बच्चे पर हमला कर देंगे। यहां का रिवाज ही ऐसा है, उस पर से कहीं कोई पकड़ा गया तो ऊपर से टेलिफोन... छोड़ दो।'

'वह डरती है या तुम और तुम्हारी चौकी इतनी कमजोर है कि लोग तुम्हारी सुरक्षा पर विश्वास नहीं करते हैं। दो दिन में मुझे गवाह चाहिए नहीं तो तुम्हारे फीते उतरवा दूंगी चिरौंजी साहब, सोच लो।'

मीरा गेस्ट हाउस के अंदर चली जाती है। चिरौंजी मदन सिंह से कहता है, 'सर कुछ करिए! ज्यादा नहीं पर जितनी संभाई है, सेवा करूँगा।' मदन सिंह झिड़कता हैं - 'मलिक साहब नहीं है मैडम कि नोट पड़ते ही आंख मूंद लें।...पहले केस सोल्व कर फिर इधर-उधर की चलेगी। हां, हमारा हिस्सा हमें जरूर मिले।'

और वाकई तीन दिन में आठ गवाह हाजिर हो गये। पुलिस ने मुजरिम को गिरफ्तार कर मजिस्ट्रेट के सामने पेशकर रिमांड ले ली। मीरा पुनः गांव गई। उस औरत ने चरण पकड़ लिए, 'तुम देवी हो। मेरा बेटा देगा गवाही।'

'पहले क्यों नहीं नाम बताया?'

'डरती थी! जब बिसनलाल का कतल हुआ था। चश्मदीद गवाह थे इसी गांव के। अदालत में बयान देने नहीं पहुँच पाए...'

चिरौंजी सिंह की पीठ ठोकी मीरा ने, 'गुड! कीप इट अप! तनख़्वाह के अलावा खाते हो तो कुछ काम करो।'

पुलिस मुख्यालय में आई जी माथुर ने फोन पर बधाई दी। वर्मा तो खुद कमरे में आ गये, 'आज क्लब में ट्रीट देनी होगी मीरा। पहला केस, वह भी डिफिकल्ट!'

'आपको तो शक था सर!'

गहरी हो गई थीं वर्मा की आंखें..., 'जिसका भला चाहते हैं उसे खतरे और आग से दूर रखने का ही मन होता है। पर मान गए कि काबिल अफसर हो।'

मीरा को महसूस हुआ था कि सामने बैठा पुलिस अफसर उसे नहीं, यूनीफार्म के अंदर उसके जिस्म को झांक रहा था। मन हुआ कि पेपर वेट से माथा चटका दे। काफी देर वर्मा बैठा रहा, पूछता रहा कि मां के अलावा कौन है? बातें जरूर कर रहा था पर जीभ कुत्ते की तरह मीरा के जिस्म को चाट रही थी। खुद अपने बारे में पूछने पर बताया, 'बीवी है, गांव में रहती है, पूरी देहातिन है। दो बच्चे हैं, वहीं गांव में दादा के पास पढ़ते हैं।'

वर्मा चले गये तो मीरा सोचती रही... बीवी साथ रखने लायक नहीं है पर भोगने लायक है! कैसा अजीब समीकरण बनाता है चालाक आदमी! माँ से बात की घर आकर तो घबरा गईं... तू छोड़ इस नौकरी को मीरा! कहें कि रावण की लंका में सीता बच सकती है पर पुलिस थाने में कोई नहीं।

'घबड़ा नहीं मां। मेरे पिस्तौल की गोली इस मामले में लिहाज नहीं करेगी।

मांगेराम मीरा को अफसर से ज्यादा बेटी की तरह प्यार करने लगा था। हर वह व्यक्ति जो मैडम के खिलाफ बोले, उससे नफरत करने लगता था। अभी तीन माह ही गुजरे थे कि एकांत देखकर मांगेराम फुसफुसाया, 'मैडम साहब! मनीराम एस. एस. पी सर का गुरगा है। दोनों आपको लेकर गंदी-गंदी बातें कर रहे थे, कल...' कहते हुए रूक गया अर्दली।

'खुलकर कहो मांगेराम...'

मनीराम से कह रहे थे, अबकी दौरे पर रगड़वा दियो मनी, एक बार रगड़ गयी तो फटे टायर सी चलने लगेगी।'

'ठीक है मांगे, तुमने मुझे बता दिया।' उस दिन घर में मां से मांगेराम को होली के ईनाम के रूप में पांच सौ रुपये दिलवाये थे। बड़ा परिवार है, मांगेराम अकेला कमाने वाला।

इतवार को फोन आया था वर्मा का घर में, 'भवानी मंडी के पास सांझी गांव में थानेदार बल्लम प्रसाद लोगों को तंग कर रहा है, साला चमार है न! मुखिया ने भी शिकायत की है। सोमवार सुबह वहां पहुँचे, मदन सिंह दफ़्तर में काम देख लेंगे, साथ में मनीराम और तीन कांस्टेबुलों को भी ले जाएँ। वहां भंवर सिंह मुआजिज जमींदार है। मनीराम वाकिफ है उस जगह से...।'

मीरा ट्रैप समझ जाती है। सोचती है कि डी आई जी राठी से बात करें या आई जी माथुर से? फिर एक हठ निश्चय जगा कि इस बार मांगे साथ जाएगा। माँ को बताया, 'सांझी जा रही हूँ, मामा पुरूषोतम के गांव..' मां ने साथ चलने का आग्रह किया तो टाल गयी।

साठ से ज्यादा किलोमीटर दूर था सांझी। दोपहर साढ़े बारह बजे वे वहां पहुँचे। तीन किलोमीटर पहले कस्बा रतसाल में गेस्ट हाउस था। भंवर सिंह मुखिया के साथ मौजूद थे। मनीराम ने कई बार वहां पड़ाव की दलीलें दी पर मीरा के आदेश पर ड्राईवर ने जीप थाने में ही रोकी। लेडी डी. एस. पी को देख बल्लम प्रसाद डर गया। मीरा ने चालाकी से मनीराम को बाहर भेज दिया और बल्लम से कहा, 'मुझे सच-सच बताना कि बात क्या है...?' तभी शूरवीर की तरह चार आदमियों से घिरे मामा पुरूषोतम पधार गये, 'हमने सोचा भाणजी अफसर है सो गेस्ट हाउस गए। वहां नहीं मिली तो घर गये कि मामी से बात कर रही होगी छोरी! पर... खैर, चल पहले घर में कुछ खा पी ले..'

'न मामा! पहले काम फिर आराम..' मीरा ने कहा और बल्लम की ओर देखा। पुरूषोतम से रिश्तेदारी देख बल्लम और घबरा गया। वह बाहर चला गया तो मामा चीखा, 'डिसमिस करना होगा इस थानेदार को! हमारे खेत जलवाएं है इसने...'

'तहकीकात कर रही हूँ मामा...'

'ऐसी की तैसी तककीकात की! तेरी मौसी का आदमी थानेदार था रामगंज मंडी में। तेरे छोटे छिन्दा

मामा ने कत्ल किया और फांसी पर चढ़ा सिरी राम खटीक। तू तो अफसर है... कर दे इस बल्लम को सस्पेंड।'

मामा को समझाकर भेजा तो डरा हुआ दरोगा बल्लम आया। उसके साथ जीप में घूमी मीरा... अनाज की खेती और बीच में पकती पोपी की फसल! बल्लम ने बताया, 'दो तीन छोटे खेत कटवा के जलवाए थे। बाकी तो हथियारबंद राजपूतों की जमीने हैं।'

मांगे गेस्ट हाउस साइकिल से घूम आया था। अकेले में फुसफुसाया, 'जाल पक्का है! रसोईयों को कमाल करना है और रात में उपमंत्री को वहीं रूकना है।' गहरा सदमा मीरा के अंदर गश्त करता है... जब पुलिस ही ऐसा करें तो गुनाह क्यों और कैसे रूके? गुनाहों के साझीदार इस मुल्क की ईंट-ईंट नीलाम करने में नहीं चूकेंगे।

भंवर सिंह राजपूत भी चौकी में आ गये थे, मामा साथ थे। अपने जले खेत का स्यापा कर रहे थे। फिर एकांत में बल्लम प्रसाद को मीरा ने हाथ से लिखकर कमेंडेशन सर्टीफिकेट दिया। भंवर सिंह से हंसकर बात की, 'भूल जाइए आपसी बैर! पुलिस आप जैसे मुअजिज लोगों के लिए ही तो है। नया-नया ए० एस० आई० है, आप प्यार से बर्ताव करें तो आपका हो जाएगा।'

भंवर सिंह, मामा पुरूषोतम और मुखिया के लाख कहने पर भी मीरा जीप लेकर वापस चल पड़ी। परेशान हो उठे भंवर सिंह... उपमंत्री को क्या कहकर समझाएंगे? सोच लिया किसी और की कुरबानी देनी होगी।'

रात उसने सही-सही रिपोर्ट बनाकर एक प्रति सुबह वर्मा को पहुंचवा दी। बौखला उठा था वर्मा.. कैसे बच आई। रिपोर्ट देखी तो परेशान हो गया। सीधा मीरा के दफ्तर में पहुँचा 'ये क्या रिपोर्ट बनाई है? बल्लम प्रसाद को कमेंडेशन क्यों दिया?'

'पूरी छानबीन की और जो सही पाया वही रिपोर्ट में लिखा है सर! बल्लम प्रसाद चमार जरूर है जाति का पर ईमानदार और साहसी है।'

'एक दिन में आपने सारी सच्चाई जान ली, ग्रेट!'

'जी, रात में रूकती तो दूसरी भयानक सच्चाई का सामना करना पड़ता मिस्टर वर्मा।'

'शटअप! जानती नहीं कि उप गृहमंत्री का क्षेत्र है वह। भंवर सिंह उनका आदमी है। जब एक्साइज वाले चक्कर में नहीं पड़ते तो आप क्यों ओखली में सर दे आईं।'

'अंधी नहीं हूँ मैं! और अब मैं माथुर साहब को सारी सच्चाई बताने जा रही हूँ। अगर छानबीन नहीं चाहिए थी तो मुझे भेजा क्यों था?'

'जाईये.. बूढ़े मे ताकत नहीं है कि उपगृह मंत्री से टकराए..'

'मुझ में है! क्योंकि आई जी, डी आई जी के अलावा यहां अखबार के दफ़्तर भी हैं और राज धानी में होम सेक्रेटरी भी। शर्म करिए मिस्टर वर्मा अपनी कारस्तानियों पर।'

भनभनाती मीरा सीधे माथुर साहब के कमरे में पहुंचती है। रिर्पाट पढ़कर परेशान हो गये माथुर साहब, 'मीरा, डियुटी होम मिनिस्टर की कांस्टीटियुन्सी है।'

'जी हां, जहां चिराग तले उनका आदमी अफीम पैदा करता है और आपके एस पी अपने ही विभाग की डी० एस० पी० का भोग लगवाकर मंत्री जी को खुश करना चाहता है।'

'व्हाट!' चीख उठे माथुर साहब।

'सर! मुझे दौरे का हुक्म इतवार की रात को दिया जाता है। मेरे पहुंचने की खबर वहां के थानेदार को नहीं भंवर सिंह को होती है। मंत्री का टूर प्रोग्राम सिक्योरिटि विभाग में आता है पर इस बार अनायास ही उपमंत्री रात को वहां क्यों पहुँच जाते हैं? और मेरे रूकने का इंतिजाम भंवर सिंह ने कैसे बिना इतला के वहां कर दिया?'

'वन मिनट...' माथुर साहब राज्य मंत्रालय के पी० आर० ओ० को एस० टी० डी० करते हैं। वह बताता है.. प्योरली पर्सनल विजिट था मंत्री जी का। इसलिए अपने दो अंगरक्षकों के साथ चले गये अपनी कांस्टीटियूंसी में ।

'ओह!' माथुर साहब माथा पकड़कर बैठ गये। फिर झुकी हुई आंखों से बोले, 'सारी मीरा! तुम सही थी। किस्मत वाली हो कि लाक्षागृह से जिंदा लौट आयी। पर मैं मजबूर हूँ। आई फील पीटि ऑन मी।'

'यह रिपोर्ट?'

मेरे पास रहेगी पर वर्मा को सजा मिलेगी। उसे बयाना के बीहड़ वीरान जिले में भेजूंगा, होम सेक्रेटरी से बात कर। हां, तुम्हें भी स्थानान्तरित करूंगा विमेन विंग में। बल्लम को यही बुलाकर

रखूँगा।'

'फिर कैसे रुकेगा अफीम का कारोबार सर?'

'नेता, पुलिस और क्रिमिनल के बीच फर्क की दीवारें बहुत धूमिल हो गई है मीरा। तुम्हें सब्र के साथ इंतिजार करना होगा। नीलकंठ बन के रहना होगा जब तक जनता स्वयं नहीं उठती है।'

'सर! क्या हम चुपचाप अखबारों को खबर नहीं लीक कर सकते हैं?'

'क्या होगा? एक और कमीशन एजेंसी में इजाफा हो जाएगा।'

परेशान सी मीरा लौट आती है। कमरे में इंटरकाम बजता है, वर्मा था, 'मार आई तीर?'

'अभ्यास जारी रहेगा तबतक, जबतक मसीहा का मुखौटा पहने कमीने राक्षस को मार न दिया जाए..' बला का साहस मीरा में जाग उठा था।

'शिट! माई फुट..', वर्मा इंटरकाम पटख देता है।

शाम तक स्थानान्तरण की खबर मिली। वर्मा जी भभके - 'साला बूढ़ा सियार! अभी राज्य उपमंत्री को फोन करता हूं।' पर फोन कैसे करें? मीरा को लेकर उपमंत्री स्वयं वर्मा पर बहुत कुपित थे।

मीरा की जीभ पर तेजाब उतर आया था, 'मैं तो बच गई उपमंत्री से, मनीराम ने क्या अपनी बहन को सुलाया?' फिर अंदर ही अंदर कान पकड़े थे, मां की हिदायत याद आ गयी थी... पुलिस में आ गई वह तो ठीक है पर उसकी भाषा तो न बोलियो!

बहुत कोशिश की मनीराम ने गिड़गिड़ा कर मैडम का गुस्सा शांत करने के लिए मगर मीरा ने इंटीग्रीटी डाउटफुल होने की रिपोर्ट आई जी को भेज ही दी। डी आई जी राठी रिटायर हो चुके थे, आई जी माथुर तक पहुंचने की हिम्मत नहीं हुई मनीराम को।

बड़ी दबंग अफ़सर समझी जाती है मीरा यादव जिले में। पुलिस मुख्यालय में लोग कहते हैं कि जो मनीराम को खैनी छुड़वा सकती है, वह सबकुछ कर सकती है।

लेकिन जब भी मीरा एकांत में होती है तो महसूस करती है कि गले में जहर खौल रहा है। लगता है कि जहर को पीकर शंकर की तरह जीना होगा नहीं तो न्याय को नकारने में समृद्ध पुलिस के दलदल में एक नुमाईशी खुशबूदार कमल बनकर रह जाएगी!.... तलाक की मारी बेसहारा समीना, फातिमा की दर्द भरी आंखें और मधु की दहेज के लिए जली देह आंखों के सामने आ जाती है। अचानक सामने वर्मा खड़ा दिखाई देता है। मीरा की मुट्ठियां कस जाती है... मानों तांडव के लिए वह पूरी तरह तैयार है।।

115 बी पाकिट जे एण्ड के
दिलशाद गार्डन, दिल्ली - 111 095

(पृष्ठ 22 का शेष)

भी नहीं थ कि पांव उठते।

'मैं अस्पताल गई। डाक्टर ने मुँह बिचकाते हुए टेटनेस की सूई लिख दी। कुछ और दवायें भी। दूकान से दाम जुड़वाया तो कुल पच्चीस रुपये लगने थे। लेकिन मेरे पास तो मात्र दस रुपये थे, जिसमें रिक्शा भाड़ा भी चुकाना था। मैं सोच रही थी क्या करूँ? तभी रिक्शे वाले ने सुझाया, 'चाची, आपका नैहर तो इसी शहर में है। जाऊँ, नाना जी से मांग लाऊँ। मुझे न चाहकर भी सिर हिलाना ही पड़ा। वह गया भी। तब तक मैं बच्ची की तरफ ताक रही थी मैं। आँख के आँसू सूख चुके थे मेरे कि तभी वह सुखा-सा मुँह लिये वापस आ गया। मेरी नजर उठी थी, पर उसकी झुकी आँखें देख वहीं झुक गई। जैसा कि बाद में पता चला कि सारे हालात देखकर पिता ने अपने बड़े की ओर ताका और वहाँ सख्ती के भाव देखकर रिक्शे वाले को कुछ नहीं दे पाये थे।

'अब तक बच्ची निष्प्राण हो चुकी थी। मैं रो रही थी। रिक्शेवाले ने तुरंत दौड़कर मेरे पिता को खबर दी, पर कोई नहीं आया। मैं हारकर अकेली ही बच्ची की लाश के साथ घर लौटी और दरवाजे पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी, पर किसी से सहानुभूति के दो शब्द नहीं मिले। पता नहीं क्यों, केवल रिक्शेवाले जिसे मैं जानती भी नहीं थी कि मेरे ही मुहल्ले का रहने वाला है, चाची-चाची कहकर रो उठा था और एक भद्दी सी गाली उछाल दी थी कि क्यों इतने हृदयहीन हो गये सब?

अक्षर बिहार, अवन्तिका मार्ग
जमालपुर - 811214 (बिहार)

सात दिन

✍ रमेश नीलकमल

वह जिन्दगी के मात्र सात दिन लेकर आई थी मेरे पास यहाँ। यह भी अजूबा ही था कि जिसदिन वह आई थी, मैं घर पर नहीं था। जब वह अपनी जिन्दगी के सात दिन पूरे कर गई, तब भी मैं नहीं था। इस तरह उसकी जिन्दगी के दो-एक दिन और मेरी उपस्थिति में ही बीते। मैं जब आया था, तब उसके आने की सूचना मिली थी। जब दूसरी बार आया था, उसके जाने की सूचना मिली थी।

उसकी जिन्दगी के सातों दिन रामायण के सातों कांड की तरह थे। जब वह आई थी उसका कोई नाम नहीं दिया जा सका। ऐसा नहीं था कि किसी ने कोई नाम सोचा ही न हो, बात दरअसल यह थी जो नाम सोचा गया था, रामायण - महाभारत के पन्नों को पलट कर जो शुभ नाम सोचा गया था, वह उसके साथ फिट नहीं बैठता था। उसके आने के समय किए गये सारे इन्तजाम अवसर के अनुकूल साबित हुए थे। यह बताना अनुचित नहीं कि जो थाली उसके आने के उपलक्ष्य में बजायी जानी थी, वह अनबजी रह गयी थी।

वह लड़की थी जिसके आगमन पर थालियाँ नहीं बजायी जातीं। फिर एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी लड़की थी वह किशोरी की, जो देखने-सुनने में खुद एक लड़की-सी लगती थी। औरतपन से भरपूर थी वह। तभी न उसे एक-एक करके तीन लड़कियां हुई थीं।

वह जो आई थी, सुविधा के लिए उसका कोई भी नाम रख लें। नीना भी ठीक रहेगा। पार्वती भी, आभा भी। अब उसके लिए जिसे जिन्दगी के महज सात दिन मुबारक थे, नाम का क्या महत्त्व? नाम रख भी दें, तो समय की कोठरी से निकले हर क्षण में उसे विस्मृत ही तो किया जाना है।

हाँ, तो जैसा कि मुझे जानने को मिला। जिस शाम वह आई, उसके स्वागत के लिए ढ़ेर सारी मनौतियाँ मानी गयीं थी। बाहर सूचना देने के लिए घर की हर औरत ने एक-एक थाली का इंतिजाम कर रखा था, वह नहीं आया। सारे घर में मातम छा गया था। किशोरी की सास अलग जाकर बैठ गई थी। छोटी ननद कितना क्या करती? अकली बुआ की तो मानो अकल ही हो खो गई थी। कितनी मनौतियाँ और भविष्यवाणियाँ की थी बेचारी ने और कानों ही कान सबको बता दिया था कि पोता हुआ तो बथान से खोलकर काली भैंस ले जाऊँगी। कोई बोल भी नहीं पायेगा।

अब जब बात उलटी पड़ गई थी और पोता की जगह तीसरी पोती ने अपने आगमन से मुहल्ले-टोले को अचकित छोड़ दिया था, किशोरी की सास चुपा गई थी और अकली बुआ को लगा था कि आसमान ने चारों ओर से कस कर छोड़ दिया है और फलस्वरूप वह रो गा भी नहीं सकती थी।

चमाइन बहुत-बहुत आशाओं पर तुषारापात होते देख भनभनाती हुई अपने टोले में जा चुकी थी। रात गहरा रही थी। रात का बारह बजा, तो उस मासूम सद्यः जात बच्ची की जिन्दगी के कुछ ही घंटे बीते थे, पर कहा गया कि एक दिन बीत गया। उसे अनुभूति होती, अपनी जिन्दगी के लम्हों से प्यार करने की ललक होती, तो वह अवश्य विद्रोह करती कि कुछ घंटे दिन नहीं होते। पूरा एक दिन होने के लिए कम से कम पूरे चौबीस घंटे तो चाहिए ही।

दूसरे दिन सुबह ने घर के तमाम औरतों के चेहरे पर नाराजगी देखी। किशोरी की सास जाने किसे सुना-सुना कर कह रही थी कि उसके तो करम जल गये। फिर लड़की आई है घर में। वह बिफर रही थी।

वह जानती थी औरत की मजबूरी। समझती भी थी, परन्तु समझौता नहीं कर पा रही थी हालात से। फलतः जब गृहपति आये, तो उसने नमक-मिर्च लगाकर किशोरी के लड़की होने की बात बताई। गृहपति भी बस गृहपति ही थे। नौ नगद न तेरह उधार। तुरंत गृहिणी को आदेश दिया कि बहू के सभी गहने जो उतार कर रखे गये हैं, वापस मत देना।

और, इस तरह शुरू हुआ उस लड़की के जन्म के दूसरे दिन का एकतरफा महाभारत। एक ओर गृहपति,
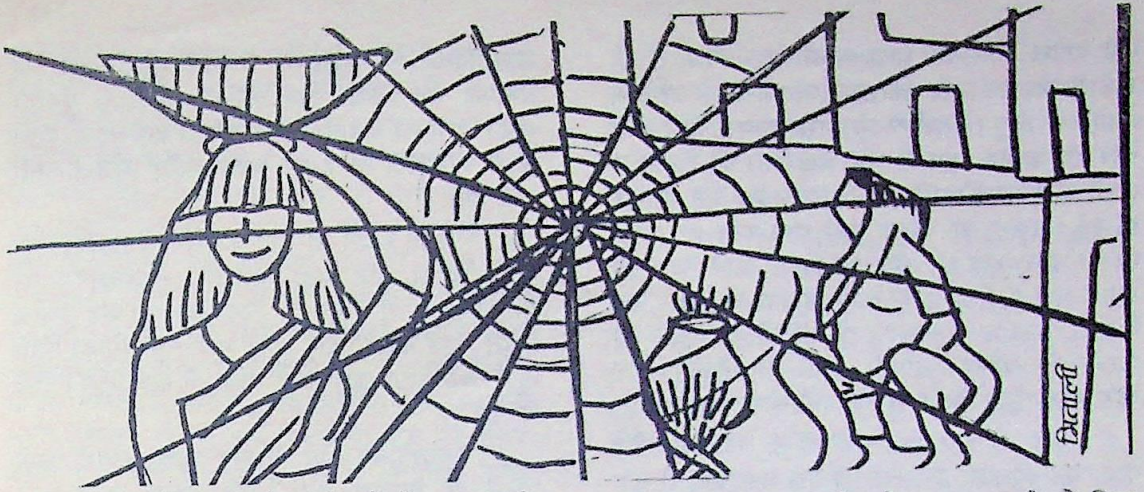
उनकी पत्नी और घर की सभी औरतें। इतना ही नहीं, मुहल्ले-टोले की तमाम बूढ़ी औरतें। और दूसरी ओर मात्र एक किशोरी जो दहशत भरी थी, चुप थी। विशेश्वर यानी मैं यानी किशोरी का पति - महाभारत के संजय की तरह चुपचाप स्थिति को देख रहा था, किसी पक्ष का साथ नहीं दे रहा था। जबकि यह सच है कि मैं यानी विशेश्वर अपनी धृतराष्ट्र की आँखों को कुछ कह भी नहीं रहा था, कुछ सुन भी नहीं रहा था।

तीसरा दिन - पता नहीं कैसे, सारे सगे - संबधियों को उसके आने की खबर मिल चुकी थी। सब एक-एक कर आए भी, मानो मातमपुर्सी करने आए हों। किशोरी के पिता आए, भाई आए। उनके चेहरों पर दर्द चस्पां था। वे भर मुँह बोल भी नहीं पा रहे थे, मानो किशोरी का तीसरी लड़की को जन्म देना उनके ही गुनाहों का प्रतिफल हो। फूफा भी आए जिनको एक-एक कर पांच लड़कियाँ हुई थी, फिर अनिरूद्ध। वे भी लगा कि किशोरी को लात दे बैठेंगे कि लड़कियाँ ही जननी थीं, तो इस घर में क्यों आई?

सारा क्रोध-आक्रोश किशोरी की ही ओर परिलक्षित था। मुझे कोई कुछ नहीं कह रहा था। शायद उनकी नजर में मेरी कोई गलती नहीं थी। मैं बेटा जो ठहरा, पिता-माँ का एकमात्र पुत्र। मेरी गलती क्या होगी? लेकिन मैं भीतर से ध्वस्त था। मैं जानता था बेटा-बेटी होने का रहस्य। आखिर पढ़ा-लिखा था। लड़कियों की शादी-ब्याह में होने वाली सारी कसरतों को जान-समझ रहा था, पर कहीं से हतोत्साहित तो नहीं था। ठीक है, बेटी हुई। तीसरी भी। अपनी छोटी-सी नौकरी के बल पर उन्हें दानना-ब्याहना पहाड़ उठाने के बराबर था, पर यह तो नहीं कि आज जन्मी और आज शादी के लिए पिताजी के अलमारी का ताला तोड़ दूंगा। समय लगेगा न! फिर इस अंतराल में मिहनत-मशक्कत के बल पर भी मैं इसी छोटी नौकरी में बना रहूँगा? आमदनी बढ़ेगी नहीं? तब क्या शादी नहीं होगी मेरी लड़कियों की? ठीक है, इंजीनियर-डॉक्टर दामाद नहीं खोज पाऊँगा। आदमी, इनसान तो खोज पाऊँगा न! और, मेरा आक्रोश बढ़ता रहा, बढ़ता रहा और अंदर ही अंदर मैंने स्वयं को उस मुहाने पर पाया कि मैं अपने आक्रोश को प्रकट कर सकूँ।

चौथा दिन आरंभ हुआ ही था कि मैं खौलते पानी सा उबल पड़ा। सबसे पहले माँ मेरे सामने पड़ी। मैंने उनके कंधे को झकझोरते हुए पूछा कि क्या तुम कभी लड़की नहीं थी? तुम तो तीन बहनों में सबसे छोटी थी, तुम्हारे जन्म पर क्या गाँव में नाना ने नगाड़े बजवाए थे। क्या तुम नहीं जानती कि औरतों को बेटा-बेटी चुनने की जिम्मेदारी नहीं रहती। यह मर्द ही न होता है जो बेटा-बेटी का जन्मदाता होता है, तब बेटी जनने पर इतनी चिल्ल-पों क्यों? फिर पिता जी की दूसरी बहन को भी लताड़ा कि तुम चाचा क्यों नहीं हुई? दादा जी क्या कुछ कर सके? अरे! औरतें नहीं हो तो मानव वंश चले कैसे?

और, तबतक मेरे इस पागलपन की सनक पिताजी को मिल चुकी थी, वे हतप्रभ थे। यह भीतरघुन्ना विशेश्वर के मुँह में जीभ उग आयी है, सोच रहे थे और जोर-जोर से नीम के दातुन से अपने दाँत रगड़ रहे थे। माँ थी कि रुआंसी होकर जाँते में जुत गयी थी। अकली बुआ दयादों के घर चली गयी थी अपने पेट का पानी पचाने।

यह चौथा दिन रविवार का था और शाम को

मुझे वापस काम पर चला जाना था - किशोरी को अकेली छोड़कर, इस एकतरफा महाभारत के बाणों से जूझने के लिए। किशोरी के पास हिम्मत नहीं बची थी। वह कातर भाव से मुझे देख रही थी कि मैं न जाऊँ और उसकी प्रतिरक्षा के लिए कुछ दिन घर पर ही रहूँ। परन्तु यह संभव नहीं था। काम पर जाना ही था और अब तो और भी कि न जाने पिता की सनक मुझे कहाँ ले डूबे? कहीं परिवार से अलग कर दें इसी अपराध के कारण, तो रोटियों का जुगाड़ तो करना ही पड़ेगा। अपनी छोटी-सी नौकरी और चार-चार मुँह। बैठने से तो नहीं होगा अब।

और मैं शाम की गाड़ी से ही काम पर लौट गया, यह सोचकर कि अब तो इस महासमर से एक ओर मैं जूझूँगा, एक ओर किशोरी। महानगर मुझे लीले या मैं उसे पछाड़कर रख दूँ। गाँव किशोरी को को समाप्त कर दे या वह इन घड़ियालों के बीच रहकर भी सुरक्षित रह जाए। बहरहाल, जूझने के अलावा कोई चारा नहीं था।

किशोरी जूझी भी, पर वह अपनी तीसरी लड़की को नहीं बचा पाई। मैं तो आठवें दिन फिर रविवार को ही लौटा, तब तक सारा खेल खत्म हो चुका था। मुझे उसके गुजर जाने की खबर इस तरह दी गई जैसे कुछ बात ही न हो। मैं हतप्रभ और किंकर्त्तव्यविमूढ़ था। पाँचवें-छठे दिन के बारे में कुछ जानता भी नहीं था। किशोरी से मिल भी नहीं पाया था। इन चार-पांच दिनों में उसपर क्या गुजरी थी, किसी ने कुछ बताया भी न था। इस असंगत भविष्य के लिए किशोरी क्या, मैं भी तैयार न था। मुझे समझ में नही आया कि इस दुर्घटना पर हँसूँ या रोऊँ ? फिर यह अगर दुर्घटना भी थी, तब वह क्या था जब उस लड़की का जन्म हुआ था?

पिता चुप थें। माँ चुप थीं। अकली बुआ चुप थीं। टोले-मुहल्ले की सारी महिलाएँ चुप थीं। सब कहीं कुछ शांत था। कोई हलचल नहीं, पर क्या तालाब में पत्थर फेंक कर उससे बनी लहरों से इनकार किया जा सकता है? ऊपर-ऊपर आप चुप तो दिख सकते हैं, पर भीतर-भीतर मथानी से मथे जा रहे हो जैसा लग रहा था मैं। चाहता था, किशोरी से मिलकर बाकी तमाम दिनों के हाल जानूँ, समझूँ। क्योंकि लग रहा था कि अभी किशारी को बहुत सहानुभूति की जरूरत है।

मौका मिलते ही मिला, तो वह फूट पड़ी। इन सात दिनों के महाभारत ने उसे मुट्ठी भर का बनाकर रख दिया। अब लीजिए, उसी के मुँह से बाकी दिनों की कहानी सुन लीजिए। वह लड़की सात बरस भी जीती तो इससे बदतर कोई और कहानी नहीं होती।

'मैं तो अपने माँ-बाप की रानी बेटी थी। दादी मुझे गोद से नीचे नहीं उतारती। किलकारियों से गुंजाती रहती थी मैं घर का कोना-अतरा। क्या मजाल किसी चीज को मैं चाहूँ और मुझे नहीं मिले। पिता खुश। बड़े चाचा खुश। छोटे चाचा तो हाथ लिये फिरते थे मुझे।

'कपड़ों की कोई भी खेप आती, सबसे पहले उसमें से निकाल कर सगुन किया जाता मुझे ओढ़ा-पहनाकर, तब बिकने जाती वह खेप। मैं छोटी सी थी, पर मेरे लिए जब भी कोई साड़ी निकाली जाती, दुहारा-तिहारा कर उसे मुझे पहनाया जाता, फिर उतार कर उसे माँ, चाची या दादी पहनती। और ऐसा होता कि दूसरे-तीसरे दिन उस खेप की साड़ियाँ बिक जातीं। लोग हाथों-हाथ लेते उन्हें ऊँचे दाम देकर भी। लोग पीठ पीछे प्रचार करते इन्हीं के यहाँ से ली साड़ी बड़ी ही सौभाग्यशाली होती है।

'सब खुश होते। घर में समृद्धि और जुड़ जाती। जानते हो क्यों? मैं घर की तीसरी बेटी जो थी। ठीक है अपनी माँ की पहलौटी जीवित संतान थी, लेकिन घर में और भी तो बेटियाँ थीं, और मेरा तीसरा कम था। इतना ही नहीं, मां की दो संतान अकाल-कवलित हो गई थीं, तब मैं आयी थी गोद में। दुख के दिनों की रानी बेटी, घर में खुशहाली आने लगी थी मेरे आने के साथ ही।

'वे जानते थे कि इस लक्ष्मी को भी विदा कर देना पड़ेगा, किसी दूसरे घर के लिए। बेटियाँ पराया धन होती ही हैं। मगर वे तब भी जानते थे कि उसकी तीसरी बेटी होगी, तो उस नये घर के लोग कितना मातम मनाऐंगे, उसे दुतकारेंगे, सारा दोष उसी के मत्थे मढ़ेंगे, और इस तरह तिरस्कृत करेंगे कि गौ-हत्या का पाप लगा हो जैसे।

'पहले-दूसरे दिन तो लगा कि मैं बेटी क्या ब्याई, कोई बम घर में आ गया हो और चर्चा की सारी बातें मुझपर ही केन्द्रित थी। क्या मर्द, क्या औरतें - सभी मुझे कुलच्छिनी कह रहे थें। शर्म के मारे मुँह नहीं दिखा पा रही थी कि वे आए जिनके गले मढ़ दी गई थी। लेकिन मेरे उनको तो कोई गिला

नहीं हुआ, कोई शिकायत नहीं हुई। ठीक है, बेटी हुई तो हुई। जैसे दो को पालेंगे, वैसी यह भी, कहकर उन्होंने उबार लिया था मुझे। महाभारत युद्ध के इन क्षणों में मुझे चक्रव्यूह के अंदर घिरा देखकर वे ढ़ाल की तरह अड़ गये थे और लोगों की सारी बातें मुझ तक पहुंचकर भी कुंद होती रही थीं। मैं क्या करती? मैंने तो तबतक मुँह खोलना भी नहीं सीखा था। धनी-मानी घर की बेटी थी। आई थी इनके यहाँ शादी के बाद, तो सबकुछ यहाँ भी था, पर कहते हैं न सुख-सौभाग्य उन्हें ही मिलता है जो आपसी प्रेम बनाये रखते हैं, घर में बात-बात पर झगड़ा नहीं करते। ससुर जी के भाई के साथ बाँट को लेकर झगड़े होने लगे थे। फलतः घर में विपन्नता पहले आई, व्यवसाय में घाटा बाद में लगने लगा था।

छोटे ससुर जी का असहयोग आंदोलन चल रहा था। ससुराल में उन्हें तड़का मिला था। अतः यहाँ बाँट-बँटवारा कर वे वहीं बसना चाहते थे। अतः यहाँ व्यापार के प्रति असहयोग दिखा रहे थे। फलस्वरूप घाटे की चादर का छेद और बड़ा होता गया। उसपर पेबंद लगाने की कूबत भी नहीं बची थी।

'इसमें भला मेरा कसूर क्या हो सकता था। ये तो पढ़ाई बंद कर कमाने लगे थे। नौकरी जो लग गयी थी। इन्होंने तो अपने चाचा जी से कहा भी था कि बँटवारा क्यों करते हैं? अब तो मैं भी कमाने लगा हूँ, सारे कर्ज उतर जाएंगे और खुशहाली लौटेगी, पर वे नहीं माने। बँटवारा होकर रहा और चाचा ससुर सपरिवार ससुराल चले गये बसने।

'अप्रैल साठ की सांझ थी। रामनवमी का दिन। थोड़ी बूंदा-बांदी। मेरी पहली लड़की आई, तो लक्ष्मी आई कहकर सास ने बताशे बाँटे। बाढ़ के दिनों में साल-दो साल बाद दूसरी आई तो चिल्ल-पों मची कि बहू को फिर बेटी हुई। और जब यह तीसरी आई तो महाभारत शुरू हुआ। जो हुआ, उसे आपको बताकर मन हल्का तो कर सकती हूँ अब, पर अब वह बेटी भी नहीं रही। इस घर में आने पर उसका स्वागत कुलक्ष्मी कहकर ही किया गया, तो भला वह यहाँ क्यों ठहरती? आप किसी के यहाँ जायें और वह घृणा से मुँह फेर ले, हर्ष के भाव न दिखाये, तो आप कितनी देर रुकेंगे उसके पास? वही हुआ, वह सातवें दिन हम सबको छोड़कर चली गयी।

'वह चली तो गई, पर पांचवें-छठे-दिन का हाल आपको बताऊँ तो आप समझेंगे कि क्यों मैं अपने सास-ससुर, पिता-चाचा, इतना ही नहीं समाज के सारे मर्दों के खिलाफ मुँह खोलने को बाध्य हो रही हूँ। इन दिनों आपकी अनुपस्थिति भी मुझे कम नहीं खल रही थी। सोचती थी - यह साजिश है मेरे खिलाफ कि सारे महाभारत का दंश मैं भोगूँ!

'आप नहीं जानते, उसी दिन मैंने संकल्प किया था कि मैं किसी 'मर्द' बेटे को कभी जन्म नहीं दूँगी। क्योंकि तब वह इन्हीं मर्दों में से एक होगा और किसी औरत के बेटी जनने पर उसे जलील करेगा। हाय री किस्मत! यह कैसा अनर्थ कि जो मर्द स्वयं एक औरत की पाक-गर्भ से जन्म लेता है, वही औरत के बेटी जनने पर लानत-मलानत करता है।

'अब आपको पांचवे-छठे-सांतवे दिन की बात बता दूँ। न ही बताती तो अच्छा होता। क्योंकि तब अपने श्रद्धास्पदों के खिलाफ बोलना नहीं पड़ता। लेकिन वे मेरे लिए श्रद्धास्पद रहे क्या? अगर नहीं, तो उनका कच्चा चिट्ठा खोलने में इतना सोच-विचार क्यों?

'छठे दिन के प्रारंभ में ही उस सबसे उपेक्षित नवजात कन्या, ने दूध पीना बंद कर दिया था। अपनी फूली छाती के दुग्ध भार को मैं संभाल नहीं पा रही थी और वह थी कि न रो पा रही थी, न दुग्ध पीने को इच्छुक थी। मैं तीन बच्चों की माँ होकर भी समझ नहीं पा रही थी कि आखिर उसे क्या हुआ है? क्या उसने समझ लिया था अपनी दादी, अपने दादा की अपने प्रति बदसलूकी को? क्या वह नाराज हो उठी थी गाँव की तमाम औरतों से जो बेटी होकर भी बेटी जनने का सुख नहीं भोगना चाहती? ढेर सारे प्रश्न थे जो मेरे जेहन में एक-एक कर उभर रहे थे।

'सांतवे दिन उसका चेहरा बुझ सा गया था, मानो उसे अहसास हो गया था कि वह अब चंद घंटों की मेहमान है। मैं क्या करती? मेरे पास पैसे तो थे नहीं, जो मैं उसे अस्पताल ले जाती, डाक्टरों को दिखाती, दवा देती, उसके चेहरे पर पुती कालिमा को उसकी हँसी - किलकारियों में बदल देती। लेकिन दुनिया बहुत बड़ी है। बुरी भी उतनी नहीं, जैसा कि उस क्षण मैं समझती थी। सास ने अपनी गांठ नहीं खोली। ससुर ने भी जान-बूझकर कलकत्ते की राह ली। तब पड़ोस की ही एक औरत ने चंद रुपये मुट्ठी में पकड़ाकर अस्पताल जाने की हिदायत दी। मैं पेशोपेश में थी कि क्या करूँ? कभी अस्पताल गयी

(शेष पृष्ठ 18 पर)

वैश्वीकरण और समकालीन कविता

✍ सुरेश पंडित

अब लोगों को यह समझ में आने लगा है कि दुनिया के अमीर और ताकतवर लोगों के लिए भूमंडलीय बाजार की उदारीकृत अर्थव्यवस्था किसी अलादीन के जादुई चिराग से कम मनोवांछित फल देने वाली साबित नहीं हुई है। क्योंकि इसने जहां एक ओर निर्धन और बेसहारा लोगों को बाजार के नियमानुशासन में बांधकर अधिक दीन-हीन बेचारा बनाया वहीं धन कुबेरों तथा शक्ति संपन्न लोगों को अधिक राज्य सत्ता का सहारा व संरक्षण देकर मनमानी करने व अराजक बनाने की खुली छूट दे दी है। परिणाम यह हुआ कि अनेक देशों की अर्थव्यवस्था चौपट हुई है, व्यापार तथा उत्पादकता की गति में रुकावट आयी है, वित्तीय क्षेत्र में उठापटक की आवृत्ति बढ़ी है और आम लोगों के लिए पेट पालने की जद्दोजहद अधिक जान लेवा साबित हुई है। तेजी से बढ़ती गैर बराबरी के इस दौर में चंद लोगों तक पूंजी के सिमटते जाने से बहुसंख्यक लोगों को बेरोजगारी व भूखमरी के क्रूर जबड़ों का शिकार होने के लिए मजबूर कर दिया है। इस तरह के हालात कुछ पश्चिमी विकसित देशों को छोड़ कमोबेश दुनिया में सभी जगह देखे जा सकते हैं।

यह बात अब प्रायः प्रमाणित हो चुकी है कि यह व्यवस्था कुछ लोगों को समृद्ध करने, सामाजिक रिश्तों को तहस-नहस करने, परस्पर सहयोगकारी रिवाजों को खंडित करने और पूंजी के प्रवाह को उन्मुक्त करने में काफी सफल रही है। कुछ मायनों में सामाजिक अभियांत्रिकी के क्षेत्र में यह एक विशाल विश्वव्यापी प्रयोग हो रहा है। इसके प्रयोग कर्ता चंद विकसित पश्चिमी देश, उनके हितों को साधने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके कार्यपालक अभिकर्ता अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोश, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन जैसी वित्तीय संस्थाएँ हैं और उनके प्रयोग के गिनीपिग हैं विकासशील और पिछड़े देशों में बसने वाले वे अरबों लोग जिन्हें अब डिस्पोजेबल करार देकर इस दुनिया से खारिज कर देने की दबी आवाज में गुफ्तगू सुनाई देने लगी है। स्वयं अमेरिका के ही एक सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री नॉम चोमस्की कहते हैं कि केवल जनमानस ही वह डाइनामाइट है जो उनकी अकूत संपत्ति के ढ़ेरों को पलक झपकते ही नेस्तनाबूद कर सकता है। इसलिये उन्होंने इस बार इसे ही सूचना प्रौद्योगिकी व संचार माध्यम के सूक्ष्म आयुधों से स्पदंन - संवेदनाविहीन बनाने की सुनिश्चित योजना के तहत काम चालू कर रखा है। इन दोनों का उपयोग वे बड़ी चालाकी से लोगों को अपनी संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, इतिहास दर्शन व कला के प्रति हेय दृष्टि पैदा करने और इसलिये उन्हें निरर्थक व त्याज्य साबित करने तथा वैश्वीकरण का अपना दर्शन जो मूलतः पश्चिमी पूंजीवादी दर्शन का ही नवीकृत, संशोधित संस्करण है, को मानव मस्तिष्क में प्रत्यारोपित करने में लगे हैं। लोगों के दिल-दिमाग को वैश्वीकरण के अनरूप ढालने और उनकी स्वतंत्र सोच व अनुभव करने की क्षमताओं को खारिज व कुंद करने में लगी इन ताकतों से लोहा लेने की हिम्मत अब क्षण-प्रतिक्षण छीजती जा रही है। ऐसे भयावह माहौल में अब भी यदि कहीं कोई क्षीण सी आशा की किरण दिखाई देती है तो वह साहित्य में, रचनात्मक लेखन में बची है। यद्यपि इसमें भी प्रायोजित लेखन, बाजार में खप सकने वाले रचना कर्म या फिर रहस्यवादी चिंतन परक कला मंडित लेखन बढ़ता जा रहा है। इसका कारण यह है कि ऐसा निरामिष-निरापद साहित्य न सत्ता को और न व्यवस्था को कोई खतरा पैदा करता है। वामपंथ की सारी जुझारू शब्दावली व मुहावरों को नखदंत विहीन करने में ऐसे अवसरवादी कला परक बिकाऊ लेखकों ने जिस कमाल की भूमिका निभाई है व निभा रहे हैं उसे देखकर यह मानने को जी करता है कि ये भी लोगों को भ्रमित करने वाली उन लोगों की साजिशों में शामिल हैं। केवल इसके मुखौटे ही देखने लायक हैं।

पर यह कोई नई बात भी नहीं है। साहित्य में रीतिकाल केवल उसी समयावधि तक सीमित नहीं रहता जिसका सीमांकन, साहित्येतिहासकार कर गये या कर रहे हैं वह फिर फिर लौट कर आता है क्योंकि वह किसी विशेष कालावधि में बंद कर रखी जाने वाली प्रवृति नहीं है बल्कि एक प्रकार की मानसिकता है जो सदा सर्वत्र प्रकट होती रहती है। पर अनुस्रोत

की बजाय प्रतिस्रोत की ओर बहने वाले भी जीव होते हैं जो अपनी सारी रचनात्मक ऊर्जा अपने समय के ज्वलंत सवालों को हल करने में लगाते हैं जिनके लिए अपने सामाजिक सरोकारों के प्रतिबद्धता से बढ़कर कोई आकर्षण - प्रलोभन नहीं होता।

वैश्वीकरण का दंश अब भारतीय जन-जीवन को भी टीस पहुंचाने लगा है। बाजार में विदेशी निर्माता कंपनियों के आक्रामक प्रवेश ने स्थानीय उत्पादकों को एक झटके में ही बचाव की मुद्रा में खड़ा कर दिया है। अपनी मोनोपोली को छोड़ने के लिए मजबूर कुछ उद्योगपतियों ने उनके साथ उनकी शर्तों पर बतौर जूनियर पार्टनर कोलेबोरेशन कर लिया है, तो कुछ ने अपने मैदान छोड़ धंधे बदल लिये हैं। परिणामस्वरूप एक ओर जहां अनेकों उद्योग बंद और श्रमिक बेरोजगार हो गये हैं तो दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय निगमों ने अपने काम अपने ढ़ंग से शुरू कर एक नई तरह की कार्य संस्कृति को जन्म दिया है। इसमें कम लोगों से अधिक काम और अधिकाधिक प्रौद्योगिकी के उपयोग पर जोर है। परम्परागत औद्योगिक घराने इस दौड़ में पिछड़ गये हैं। नये लोग रातो-रात अरबों पति बन गये हैं। गरीब और गरीबी जैसे शब्दों की निरंतर हो रही उपेक्षा इन्हें समाजवाद की तरह अप्रासंगिक बना रही है। केवल समृद्धि की बात, करोड़ों पति बनने, बनाने की बात माहौल में गूंज रही है। यहाँ की सरकारें, राजनैतिक पार्टियाँ, धर्माधिकारी, अभिजन और उन जैसा बनने के लिए लालायित मध्यमवर्ग के बहुसंख्यक लोग अधिकाधिक पूंजी और उपभोग केन्द्रित संस्कृति के स्वागत में दिलो जान से लगे हैं। ऐसे में हमारे रचनाकर्मी अर्थात हिन्दी के लेखक, कवि इस पेशोपेश से उभर आये हैं कि उन्हें किनके साथ होना है, किनके पक्ष में लिखना है, किनकी आवाज़ को मुखर करना है। वे जानते हैं इस बार स्वाधीनता संग्राम की तरह लड़ाई आमने-सामने की नहीं है। यह लड़ाई बिना रक्तपात के लोगों के तन की बजाय मन को गुलाम बनाने की है। इसलिए मानसिक उपनिवेशीकरण के इन साम्राज्यवादी मंसूबों की तुलना ईस्ट इंडिया कंपनी की कूटनैतिक चालों से करना संकट का बहुत स्थूल सरलीकरण है। एकांत श्रीवास्तव इस खौफनाक स्थिति को इन शब्दों में प्रगट करते हैं, 'यह घूमती हुई पृथिवी / डायनासोर के खुले हुए / जबड़े में आ गई है।' आश्चर्य है इस स्थिति में भी वे राष्ट्रवादी लोग प्रसन्न है कि जिन्हें समाजवाद के अलावा किसी की भी गुलामी से कोई परहेज नहीं है। कवि शील ने अपनी 'लाल पंखों वाली चिडिया' में कितनी बेबाकी से उनके इस विगलित अट्टाहास को मूर्त रूप दिया है - 'सिर पर दुनिया उठाये वे/चीख रहे हैं/ मार्क्सवाद के मरने का सपना देख रहे हैं/जैसे मार्क्सवाद/कीट पंतगा, पशु पक्षी या आदमी हो।' बाजार की शक्तियां हर सजीव-निर्जीव को पण्य वस्तु बनाने उनका उपयोग करने में लगी हैं। उनकी नजरों से स्त्री-पुरूष, बाल-बच्चे कोई नहीं बचा है। न ही शहर, गाँव, देहात या आदिवासी क्षेत्र उसकी आँखों से ओझल हो रहे हैं। जहां जो प्राकृतिक-मानवीय संसाधन उनकी गृध्रदृष्टि देख पाती है उस पर डाका डालने की कुचक्र योजनाएँ उनके दिमाग में कुलबुलाने लगती हैं। इसी बात को भांपते हुए ज्ञानेन्द्र पति लिखते हैं - बस्तर में अपना बिस्तरा/बिछाना चाहता है स्वार्थ लोलुप उद्योगपति/बरजती है उसे कड़कनाथ की कुकड कू/ जगाती है गांव को/मुंह अंधेरे। ताकि वह अपनी पहचान बचा ले।' ठीक इसी कड़कनाथ की भूमिका का अब कवियों ने निर्वाह करना शुरू कर दिया है। इस गरीब देश में जहां महानगरों के चकाचौंध भरे बाजारों की बिजलियां बुझने पर लोग पांच सितारा होटलों के कूड़ादानों के पास इसलिए बैठे रहते हैं कि वहां के बैरों द्वारा फेंकी गई जूठन से अपना पेट भर सके और पटरियों पर सिकुड़कर रात के चंद घंटे नींद के नाम पर बिता सकें उस देश में करोड़ों रुपये बांटने का क्रूर खेल मीडिया दिखलाये इससे बढकर इस वैश्विक अर्थव्यवस्था का विद्रूप भला और क्या हो सकता है। ऋतुराज इस विद्रूप को इस तरह व्यक्त करते हैं - 'और वे दिखा रहे थे उनके बनाये शहर/जिनकी खौफनाक व्यवस्था को छिपाने के लिए/ कई किस्म के बाजार लगाये गये थे/ जहां उपहारों, कारों और उत्सवों का जमघट था/करोड़ों रुपये बांटे जा रहे थे/उथले पानी में अंगूठी खोज लेने के वास्ते।' किस तरह लोगों को बहकाया जा रहा है। बाजार उपर से अनिश्चित सा दिखलाई पड़ रहा है जैसे कौन बनेगा करोड़पति? कोई भी बन सकता है। मैं भी, आप भी। लेकिन सूत्र पूरा का पूरा जो बना रहा है उसके हाथ में है। वह कब बनायेगा और किन लोगों के बीच से बनायेगा इन विकल्पों में से वही चार-पांच विकल्प हैं। इन्हीं में से एक सही जवाब है अर्थात् चार लोगों में से एक को करोड़पति बनना है और इसका सूत्र बनाने वाले के पास है। इस सूत्र की स्पष्ट व सपाट व्याखा करते हैं

भगवत रावत – 'समझदार और पढ़े-लिखे लोग हैं आप/गणित बहुत कमजोर कभी नहीं रहा आपका/कभी हिसाब लगाकर ही देख लेते / कि सौ करोड़ के देश में / अधिक से अधिक हो सकते हैं कितने करोड़पति/और अगर उतने हो भी गये / तो कितने करोड़ो को जमीन के / और कितने नीचे जाना होगा।' और अपनी इस कविता के अंत में वे कहते हैं कि कवि कुल में पैदा हुए एक साधारण नागरिक की तरह मैं अपनी इस कविता के मार्फत सचेत करना चाहता हूँ कि माया को नहीं उसके द्वारा ठगे जाने के गहरे अर्थ को अब तो पहचानिये।

लीलाधर जगूड़ी अपनी लंबी कविता 'खबर का मुँह विज्ञापन से ढ़का है' में भूमंडलीकरण की व्यापारोन्मुख प्रवृति को उजागर करते हुए बताते हैं कि हमारे आलू कचालू के बारहमासी स्वाद को बेचते हुए, शिकंजी और जलजीरे को शिकंजे में लेते हुए, हल्दी और अदरक की गांठ को मुँह में दबाये हुए यह वैश्वीकरण अब देश के पूरे वातावरण के मुँह से बोलता हुआ सुना जा सकता है। उसके व्यापारिक लोकतंत्र में जो न खाये पिये ताज्जुब नहीं वह अपने को अस्तरीय व हेय न समझे। आगे चलकर वे टर्मिनेटर बीज बनाने और लोगों की गरीबी व भूख मिटाने के लिए उनकी क्रयशक्ति बढ़ाने पर जोर देते हैं, और आगे जगूड़ी लिखते हैं – 'जो संस्थाएँ रिसर्च करती हैं/उनके निकर्ष हैं कि खबरों ने भले ही आतंक को काफी/फैलाया हो, पर विज्ञापनों ने समाज की कुछ नैतिक सेवा भी की हैं/ जितना है एड्स का डर उसको कहीं ज्यादा फैलाकर पत्नी को/पतिव्रता और पति को पत्नीव्रता बना रहा है/जो कोई धार्मिक कथा नहीं कर पाई/इसका श्रेय कंडोम बनाने वाली कंपनियों को जाता है/जो अपने मुनाफे का पांच प्रतिशत एड्स के प्रचार में खर्च करती हैं/जो संस्थाएँ रिसर्च करती हैं।'

कुमार अंबुज हैरान है कि उन्हें यह तक पता नहीं चला कि कब वे बाजार में हैं और कब नहीं हैं। क्योंकि दो चार घर बन जाते हैं या दो जन मिलकर बात करने लगते हैं बाजार उनमें जा बैठता है। जहां वायरस के लिए सेंध लगाना मुश्किल होता है वहीं कोई दूकान यकायक नमूदार हो जाती है और फिर वे दो दोस्तों के मिलन को इन शब्दों में बांधते हैं – 'अकसर ही कोई परिचित सुनाता है किस्सा / कि किस तरह/उसके बचपन का एक दोस्त उसके साथ रहा चार दिन तक/ और वह यहीं समझता रहा कि वह अपने दोस्त के साथ रहा चार दिन/हँसते हुए कहता है आगे/मैंने उसे भनक भी नहीं लगने दी/कि वह किसी दुकानदार के साथ रहा चार दिन।' पर वह भी बेचारा क्या करे दुनिया के चप्पे-चप्पे पर अब आपको सिर्फ दुकानदार और ग्राहक ही मिलते हैं कहीं कोई परिचित, दोस्त या रिश्तेदार दिखाई नहीं देता।

लीलाधर मंडलोई के नायक का नाम है चोखेलाल। उन्हें यह मुगालाता रहा कि उसे न खरीदा जा सकता है न तोड़ा जा सकता है क्योंकि न उसे अंग्रेज झुका पाये थे न देसी हुक्काम। लेकिन पिछले दिनों जब वह अचानक गाँव छोड़कर चला गया तो उसका मानों कायान्तरण ही हो गया। उसका देसी लिबास, गंवई बोली, अक्खड़ स्वभाव सब कुछ मसाला बन गया पत्र-पत्रिकाओं और विचार विमर्श का। कभी उसे मेलबोर्न में हो रहे क्रिकेट मैच में किसी चीज के विज्ञापन का हीरो तो कभी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर विमान से उतरते भदेस अंग्रजी मे किसी उत्पाद के बारें में कुछ बोलते दिखालाया जाने लगा। एक रोज मंडलोई को उसके बच्चे बताते हैं – 'बच्चों ने कहा वह हवाई जहाज से उतरा था/और उसके भीतर मानो कोई प्रधानमंत्री बैठा था/चोखेलाल था कि स्क्रीन पर बार-बार दीखता/बच्चे लेकिन जानते थे कि हंसी वह/कोई और थी और दृश्य कोई और/दिलचस्प यह था कि/उस हंसी को उत्पाद के स्वाद के रूप में/दिखाया जा रहा था/उसकी हंसी अब कोका कोला बेच रही थी।'

अपने तीज त्योहारों की रौनक फीकी पड़ती जा रही है उनकी जगह नये प्रति स्थापित उत्सव दिवसों की चमक-दमक बढ़ रही है। 'वेलेन्टाइन डे' 'न्यू ईयर्स डे' पर होने वाले धूम धड़ाके को अब मीडिया जितने उत्साह से दिखाता है उतना तीज या रामनवमी को नहीं दिखाता। इसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों की साजिश कहें या मीडिया की करतूत कि नई सहस्राब्दी और शताब्दी को वे समय से पहले ही मनवा देते हैं। 'मिलेनियम पर भारत एक शहर' में जो कुछ दिखायी दिया है उसे ऋतुराज इस प्रकार प्रगट करते हैं – 'हर जगह अस्पताल से पहले स्कूल/और स्कूल से पहले मंदिर बनाये जा रहे हैं/यह भी होता था कि मंदिर ही स्कूल बन जाता था/जहां स्वयं सेवक लाठियाँ भांजने का अभ्यास किया करते थे/फिर जब स्कूल खुल जाता था तो ठेकेदार की पट्टियाँ गिर जाती थी/ (बढ़ती आबादी

के प्रति उनकी चिंता के कारण) और स्कूल अस्पताल में तबदील हो जाता था/जहां डाक्टर तुरंत पहुंचकर मृत्यु प्रमाण पत्र दे देते थे।'

इसी तरह केदार नाथ सिंह, राजेश जोशी, अरुण कमल, अनिल गंगल आदि पुरानी एवं नयी पीढ़ी के कवि लगातार अपनी कविताओं से वैश्वीकरण के विविध आयामों पर रोशनी डालते हुए उनसे आसन्न और दूरस्थ खतरों के प्रति लोगों को आगाह करने में जुटे हैं। इस अभियान में उनकी सक्रियता कितनी ईमानदारी से बढ़ रही है इसका प्रमाण उनकी कविताओं के बढ़ते आकार, सपाट बयानी, और अनावृत शिल्प से मिलता है। वे कवि जिनकी पिछली कविताएँ वैचारिक गूढ़ता के कारण इतनी दुरूह हो चली थी कि सुशिक्षित लोगों को भी उन्हें समझने में कठिनाई होती थी अब इतनी सरल संबोध होने लगी है कि सामान्य पाठक के लिये भी उनके भावों को ग्रहण करना कठिन नहीं रहा है। इस सर्वग्रासी खतरे के प्रति आज के कवि इतने चौकन्ने हो उठे हैं कि उन्होंने अपने और आम पाठकों के बीच बढती संप्रेषणगत दूरी को तुरंत पाट दिया है और साबित कर दिया है कि अब वे लोगों को जगाने की मुहिम से अपने को अधिक समय तक दूर नहीं रख सकते।

383, स्कीम नं. 2, लाजपत नगर,
अलवर -301 001

आलेख

असली बड़े अपराधी को बचाते हैं क्यों?

देवेन्द्र कुमार पाठक

पिछली सदी के उत्तरार्द्ध में आपातकाल के बाद गैर-कांग्रेसी सरकार को श्रीमती इंदिरा गांधी ने सत्ता से हटाने के लिए नयी नीतियों का कारगर इस्तेमाल कर पुनः सत्ता प्राप्त किया था और भारतीय समाज व्यवस्था की वर्ण आधारित जातिवादी व्यवस्था को नये राजनीतिक ढांचे के अनुसार पुनर्गठित कर अपने स्थायित्व की मंशा को कमोवेश पूरा भी किया।

आजादी के बाद के तीन दशक भारतीय सामाजिक व्यवस्था के लिए ज्यादा संभावना संपन्न थे, सिवाय इसके कि संवैधानिक आधार पर आदिवासी एवं पिछड़े दलित-अस्पृश्य वर्ग की जातियों को आरक्षण का लाभ देकर उनको सामाजिक, आर्थिक प्रगति के रास्ते पर घसीटकर नहीं, बैशाखी के बल पर चलने का अवसर दिया गया।

इन तीन दशकों में भारतीय समाज सामान्य, अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति और अल्पसंख्यक वर्ग में संवैधानिक आधार पर बांटा गया था। सामान्य वर्ग की बहुसंख्यक द्विज-जातियों के साथ-साथ कई ऐसी जातियों को रखा गया जो अस्पृश्य, पिछड़ी और जजमानी प्रथा की परम्परागत जाति के व्यवसाय सेवा-कार्यों की जिम्मेवारी मन या बेमन से ढो रहे थे। सामान्य वर्ग में कई ऐसी सेवाकार्य करने वाली परजन-जातियों को भी रखा गया था, जो हर जाति के लिए स्वीकृत, मान्य और छुआछूत की दुर्भावना से मुक्त थीं। (यद्यपि अलग-अलग प्रांत के अलग-अलग ग्राम्यांचलों में परजन-जातियों की मान्यता के अलग-अलग मानक मानदंड थे)

इंदिरा गांधी ने पुनः सत्तासीन होने के बाद प्रमुखता से यही कार्य किया। सामान्य वर्ग के अंतर्गत आनेवाली इन जातियों को पिछड़े वर्ग के रूप में चिह्नांकित कर दिया गया था। मतदाता संख्या और भावी सफलता के लिए इन जातियों की अहमियत को श्रीमती गांधी ने समझ लिया था। इस विभाजन में स्पष्टतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया और कायस्थ के अलावा वे गैरहिन्दू भी शामिल थे, जो अपने आप को शेख, सैयूयद, पठान कहते थे। 'बहना' मुसलमान जो हिन्दू समाज व्यवस्था की जजमानी प्रथा की तरह परजन या सेवक कहलाता हैं, वे भी इससे बाहर थे। स्पष्टतः सामान्य वर्ग में जनेऊ धारण करने वाली द्विज जातियो का ही प्रधान्य एवं बहुलता थी। पहले सामान्य जाति के साथ जो परजन सेवक जातियाँ थीं, वे अब पिछड़ा वर्ग के रूप में चिह्नांकित होकर राजनीतिक अहमियत रखने लगी थीं। इनकी निर्णायक भूमिका राजनीति को प्रभावित करती थी। पिछड़ा वर्ग की इन जातियों का जनमत अ० जा० और अ० ज० जा० की मिली-जुली शक्ति के सामने अड़ता-भिड़ता रहा। सामान्य वर्ग के साथ होकर

इसने चुनाव-परिणामों को अविश्वसनीय ढंग से प्रभावित किया। यही वजह थी कि सदी के आखिरी दशक में खुल कर वैश्य वर्ण की जातियाँ भी पिछड़ा वर्ग में आ गई, जो जनेऊधारी थीं। सामान्य वर्ग में ब्राह्मण, क्षत्रिय और बनिया जाति वालों के साथ अब कायस्थ भर रह गये हैं। यह बात बड़ी दिलचस्प और गौरतलब है कि बहुसंख्यक पिछड़ों को स्कूली स्कॉलरशिप के अलावा 'आरक्षण' की सुविधा अ० जा० एवं अ० ज० जा० की तरह आज तक नहीं मिली। स्थानीय चुनावों में जरूर यह 'पिछड़ा वर्ग' 'आरक्षण' के लिए इस्तेमाल होता रहता है।

आज देश में जो खिचड़ी सरकार राजग के नाम पर सत्ता चला रही है, उसकी ओर बड़ी उम्मीदें लगाकर देखते पिछड़े वर्ग के लोग बदइस्तेमाल की दुर्नियति भोग रहे हैं। आज सामान्य वर्ग के जो मुट्ठी भर ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया और कायस्थ हैं, उनपर कोई आंच नहीं आती क्योंकि वे पूंजीवादी समर्थ सत्ता-शक्ति संपन्न, शोषक और धर्म, शिक्षा, व्यापार, बाजार, व्यवसाय तथा देश की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित संचालित करने वाले ऐसे सहस्त्रबाहु हैं, जिनसे सत्ता की हद से बाहर विपक्ष में खड़ी राजनीतिक शक्तियाँ फिलहाल मुँह की खा रही हैं। इस संदर्भ में यह तथ्य काबिलेगौर है कि तमाम धर्मनिरपेक्ष, संवेदनशील, प्रगतिशील उदारवादी और शिक्षित बिरादरी के नामी-गिरामी विचारक, समाजचेता और वामपंथी चिंतक लेखक गण सामान्य वर्ग की जाति 'ब्राह्मण को लक्ष्य कर मनुवाद, द्विजवाद, सवर्णवाद और ब्राह्मणवाद को अन्य जातियों के पिछड़ेपन, गरीबी और दुःखो का जिम्मेवार ठहराते हैं। आज भी देश की किसी भी बड़ी घटना के पीछे कारणों के खोज की शैली वही है। देश में सांप्रदायिक, धार्मिक दंगा हो या जाति आधारित अमानुषिक अत्याचार, धरना-प्रर्दशन, आगजनी-तोड़फोड़ हो या राजनीतिक, आर्थिक, अराजकता सबके पीछे हमारे राजनीतिक अगुए 'विदेशी हाथ देखते हैं'। विचारक, बुद्धिजीवी, और लेखकगण तमाम समस्याओं की बुनियादी वजह ब्राह्मणवाद, मनुवाद, सवर्णवाद, द्विजवाद को ही मानते हैं। कहते हैं - एक भी सवर्ण बीड़ी नहीं बनाता, खेत-मजदूर वर्ग भी सवर्ण नहीं होते। एक भी सवर्ण औरत धान की कटाई नहीं करती।

मौजूदा सामाजिक जीवन में परिस्थितियाँ इतनी तेजी से बदली हैं कि उपरोक्त कथन सिर्फ किताबी अध्ययन पर आधारित अंखमुंदी दलील लगती है। सत्ता और व्यवस्था से जुड़े मुट्ठी भर लोगों में जो सवर्ण-द्विज जातियाँ हैं, उनकी राजनीतिक, आर्थिक सबलता प्रतिष्ठा को करोड़ों सवर्ण खेतिहर-मजदूरों का सच मानना अनुचित है।

'उच्च द्विज जातियां बिना कष्ट के सबकुछ पा रही है, यही धार्मिक हिन्दुत्व है।' इस तरह के विमर्श और निष्कर्ष सत्ता-व्यवस्था को अनजाने ही बचाते लगते हैं। होना यह चाहिए कि बिना किसी लाग-लपेट के निठल्ले, मुफ्तखोर, कामचोर, बेईमान, भ्रष्ट नेताओं, राजनीतिज्ञों को ही दोषी माना जाए। वास्तव में यह सब चालाकी है सत्ताधारी और गैर-सत्ताधारियों की। सामान्यतः 'ब्राह्मणवाद', 'द्विजवाद', 'सवर्णवाद, 'मनुवाद' के विषय में मेहनतकश वर्ग के किसी भी ब्राह्मण - गैर ब्राह्मण, हिन्दू - गैर हिन्दू को व्यवस्थित स्पष्ट जानकारी नहीं है। दलील दी जाती है कि सवर्णों के तमाम विचार, संस्कार, एवं व्यवहार के पीछे ये ही तत्त्व सक्रिय होते हैं।

इस दलील को मानकर चलें तो फिर यह भी मानना होगा कि जाति-विशेष के ब्राह्मण ही नहीं गैर-ब्राह्मण जातियों के लोग भी इन्हीं तत्वों से संचालित होते हैं। मसलन एक ही वर्ग अनुसूचित जाति की जातियों में भी परस्पर ऊँच-नीच और सवर्णता बोध पाया जाता है। एक ही जाति की उपजातियों में भी ऐसी ही सर्वणता की संकीर्ण वैचारिकता क़ाबिलेगौर है। आज भी मुसलमानों में जो परजन-सेवक जातियों के लोग हैं, ओछे माने जाते हैं विवाहादि संस्कार के लिए। यही सच ईसाई समाज का भी है। म० प्र० में द्विज जातियों के क्षत्रिय 'रघुवंशी' क्षत्रियों को नहीं स्वीकारते हैं। 'रघुवंशी' अपनी ही बिरादरी में विवाह करते हैं, यही हाल शांडिल्य गोत्रीय 'महापात्र' जाति (यह महापात्र 'दाह संस्कार' से लेकर 'दशगात्र' तक अपनी सेवाएँ द्विज जातियों को देता है, इसे 'महाब्राह्मण' भी संबोधित करते हैं) की भी विडंबना है। उसकी अपनी ही जाति के ब्राह्मण उससे विवाह संबंध नहीं करते।

दरअसल बदली हुई परिस्थितियों में गहन-व्यापक खोज और अध्ययन सर्वेक्षण के अभाव में जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे सनसनीखेज घटनाओं के आधार पर होते हैं। सच यह है कि अब ब्राह्मण द्विज जातियों के लोग बीड़ी बनाते हैं, कपड़ा मिलों में काम करते हैं, झाड़ू लगाते, जूठन धोते हैं। सवर्ण औरतें खेतों में काम करतीं हैं।

अब सवाल उठता है कि क्या है यह द्विजवाद?

स्पष्टतः यह उपनयन या जनेऊ संस्कार के बाद 'द्विज' या दूसरा जन्म लेने वाली जातियों के 'द्विजवर्ग' की सोच को इंगित करता है। अतः 'द्विज' समूह या वर्ग में वे जातियाँ हैं जो जनेऊ धारण करती हैं। ब्राह्मण, क्षत्रीय, बनिया के अलावा अब जनेऊ पहनने वाली वे भी जातियाँ हैं, जिन्हें आप, हम दलित पिछड़ा, अ० जा०, अ० ज० जा० कहते हैं।

फिर यह द्विजवाद क्योंकर आरोपित होता है। इसी तरह शर्मा, गौतम, भारद्वाज, वर्मा, ठाकुर राजपूत, चौहान आदि उपजाति अपने नाम के साथ जोड़कर लिखने वाले क्या सभी सवर्ण, गैरदलित हैं?

मैं विषयान्तर नहीं कर रहा हूँ, न मुझे अपनी जाति-बिरादरी की पक्षधरता से कुछ लेना-देना है। असल बात यह है कि इसतरह से असली अपराधी को बचाया जा रहा है। ब्राह्मणवाद एक मनःप्रवृति है जो हर जाति वर्ग में पाई जाती है। 'द्विजवाद' की शिकार दलित-पिछड़ी जातियाँ खूब हैं। वास्तव में 'द्विजवाद' एक ऐसी प्रतीकात्मक पहचान या विशिष्टता-बोध का ऐसा विधान है, जो 'ब्राह्मणवाद' की मनः प्रवृति को समाज-व्यवहार, जीवन परिवेश में प्रमाणिकता प्रदान करता है। 'द्विजवाद' सवर्णवाद का पोषक तत्व है, यह ब्राह्मणवादी मनोवृत्ति को मनःप्रवृत्ति में रुपांतरित करता है। यह द्विजवाद - ब्राह्मणवाद आज हर जाति-वर्ग, धर्म-कौम, वर्ण-वर्ग, स्तर में किसी न किसी रूप में अपना असर दिखा रहा है। एक-से-एक तत्सम शब्दावली के उपजाति बोधक नामों की सूची हजारों में है। यह विशिष्टताबोध, इसका प्रर्दशन ही द्विजवादी जीवन शैली और ब्राह्मणवादी मनःप्रवृति के रूप में अपना जलवा दिखा रही है।

असंगठित क्षेत्र में आज बीस-पच्चीस रुपये से लेकर सौ-सवा सौ रुपये प्रतिदिन यानि छः सौ रुपये मासिक से लेकर तीन-साढ़े तीन हजार रुपये मासिक तक जो मजदूर विभिन्न संवर्गों में काम करते हैं, उनमें हर जाति, वर्ग, वर्ण, धर्म, संप्रदाय के होते हैं। रही बात देश में होने वाले दंगों, तोड़-फोड़, हिंसक, अमानवीय कुकृत्यों की, तो इसमें दो मत नहीं कि इस तरह की बर्बरता करने वाला कोई दिहाड़ी मजदूर नहीं होता।

सत्ता, व्यवस्था और उसके आस-पास, ऊपर-नीचे, भीतर-बाहर मंडराते दोपाए नरपशु ही यह खूनी खेल खेलते हैं।

ये सत्ता-व्यवस्था के भीतरी-बाहरी पक्ष-विपक्ष के लोगों की जाति, वर्ग, संप्रदाय, धर्म के साथ मेहनतकशों को जोड़कर देखने से बहुसंख्यक जनता में गलत प्रभाव पड़ता है।

सत्ता, सत्ताधीश यही चाहते भी हैं कि जनता को अलग-अलग खानों में चिह्नांकित कर दिया जाय ताकि जनमत बिखरा रहे। खिचड़ी सरकारें बनती रहें, सत्ता में बैठे अपराधी बचते रहें (हम उन्हें बचाते रहें) यही वे चाहते हैं।

नाम क्या गिनाएँ? ऐसे कितने ही नाम इधर के राजनीतिक दलों से अपनी सुविधानुसार दल के सरपरस्तों ने जोड़ लिये हैं।

इन नराधम, नरपशु, शैतान राजनीतिज्ञ नेता, सत्ताधीशों से मेहनतकश जनता को जोड़कर देखना और इन्हें मानक-मानदंड मानकर जनता का मूल्यांकन करना, मेरी समझ में इनके स्वार्थ हक-हित में बदस्तेमाल होना है। बाकी बड़े नामी गिरामी, ज्ञानी-जनों की सोच-समझ न समझ पाने, न अपनाने की ज़िद के चलते हम तो इतना ही जान सके हैं, ये 'वाद' बस विवाद करते हैं ऐसी ही कूबत होती इन 'वादों' में तो पड़ोसी दुश्मन से पार न पा लेते। क्या लिखना इन पर, इनके वादों पर...।

☞ पोस्ट साइंस कॉलेज डाकघर खिरहनी,
कटनी (म० प्र०) - 483 ५०१

'वर्तमान संदर्भ' के रचनाकारों से

- 'वर्तमान संदर्भ के लिए उच्चकोटि की कहानियाँ, कविताएँ, विचारोत्तेजक एवं सामयिक विषयों पर निबन्ध, संस्मरण, व्यंग्य, लघुकथा आदि आमंत्रित हैं। यह आपकी पत्रिका है, अतः औपचारिक आमंत्रण की प्रतीक्षा न करें, रचनाएँ भेजें
- रचनाएँ साफ-सुथरी हस्तलिपि में या टाइप की हुई होनी चाहिए।
- रचनाएँ वापस माँगी जाने की स्थिति में पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा संलग्न होना जरूरी है।
- रचनाएँ मौलिक तथा अप्रकाशित ही भेजें ।
- रचना पर निर्णय एक महीने के अंदर लिया जाता है, कृपया धर्य पूर्वक प्रतीक्षा कर लें।

— संपादक

वर्ग संघर्ष और शम्बूक

डा0 परमलाल गुप्त

कोलकता से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'जनसंक्षार' में श्री सत्यानारायण ठाकुर का एक लेख 'सामाजिक न्याय के लिए शम्बूक ने किया था पहला विद्रोह' प्रकाशित हुआ है। इसमें उन्होंने शम्बूकों को दलितों का नेता मानकर उसे अध्यात्म साधना के रूप में हड़ताल करते हुए प्रदर्शित किया है, जिसमें सवर्णो की सेवा का कार्य ठप्प हो गया था और बीमार ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु हो गयी थी। राम ने शम्बूक को सजा देकर यह विद्रोह कुचल दिया और वर्ण व्यवस्था की रक्षा की। इस संबंध में पहली बात ध्यान देने की यह है कि रामायण में यह प्रसंग प्रक्षिप्त है, जिसे बाद में जोड़ा गया है। वाल्मीकी रामायण का रचना काल लगभग पंन्द्रह सौ ई० पूर्व माना जाता है। मूल रामायण के प्रक्षिप्त अंशों को हटा देने से इसकी भाषा पर वैदिक प्रभाव स्पस्ट दिखायी देता है। पाणिनी का काल ५०० ई० पूर्व का है। इसलिए वाल्मीकी रामायण की रचना इसके बाद की नहीं हो सकती। कुछ विद्वानों ने इसे तीन हजार ई० पूर्व० की रचना माना है। उस समय वर्ण व्यस्था गुण - कर्म और स्वभाव के हिसाब से थी। इसमें शूद्र भी राजा के रूप में प्रतिष्ठित हो सकते थे। इच्छाकु वंश में राजा सुदास शूद्र ही थे।

भारत में जाति - व्यवस्था के विधान की नींव १८५ ई० पूर्व० में सुमति भार्गव नामक व्यक्ति की लिखी हुई 'मनुस्मृति' ने डाली। इस 'मनुस्मृति' के पूर्व की असली 'मनुस्मृति' उपलब्ध नहीं है। डा० अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था के विरोध में इसी मनुस्मृति को जलाया था। यह 'मनुस्मृति' वास्तव में सवर्णो का षडयंत्र था और मूल 'मनुस्मृति' को विकृत करके इसमें अनेक प्रक्षेप किये गये थे। धीरे-धीरे मध्यकाल में इसे जातिवाद की कठोरता से जोड़कर दलितों या शूद्रों पर अनेक अत्याचार किये गये। इसका विरोध पूर्णतया न्याय संगत है। परन्तु इसे रामायण काल में राम से जोड़ना और शम्बूक को डा० अम्बेडकर की श्रेणी में रखना उचित नहीं है। शम्बूक की तपस्या और उसके कारण ब्राह्मण-पुत्र की मृत्यु का प्रसंग बाद में जोड़ा गया प्रक्षिप्त प्रसंग है। इसे वास्तविक नहीं मानना चाहिए। इस प्रसंग का राम और रामायण से कोई संबंध नहीं है। रामायण काल में जाति व्यवस्था थी ही नहीं। राम कोई ऐसा अन्याय नहीं कर सकते थे, क्योंकि वे समदर्शी थे। उन्होंने लोकमत से प्रेरित होकर अपनी सीता तक का परित्याग कर दिया था। तब वे किसी व्यक्ति या वर्ग के प्रति ऐसा अन्याय कैसे कर सकते थे? गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है -

राम राज्य बैठे त्रैलोका। हर्षित भये, गये सब शोका।।
बयरु न कर वाहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।

इसीलिए राम राज्य को एक आदर्श राज्य माना जाता है, क्योंकि इस राज्य में ऊँच-नीच, धनी-गरीब, छूत-अछूत आदि का कोइ भेद नहीं था। सभी धर्म -नीति का पालन करते हुए सुख से रहते थे।

पूर्व प्रसंगों को नये अर्थ में प्रस्तुत करना बुरी बात नहीं है। परन्तु इसमें यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह प्रसंग मूल रचना से संबद्ध है या नहीं। ऐसी बातों से जनता में भ्रान्ति उत्पन्न होती है। विवेक से काम लेने पर ही संपूर्ण समाज में एकता, समता और सामंजस्य की स्थापना हो सकती है।

संयोजक, अ भा. गा. साहित्यकार परिषद्
'नमस्कार' बस स्टैंड के पीछे,
सतना - 485 001

समाधान

✍ रमेश मनोहरा

देश की बढ़ती हुई भिक्षावृति पर मंत्री जी ने गहरी चिंता व्यक्त करते हुए मंच से कहा, 'आज देश में भिक्षावृति की प्रवृति बहुत बढ़ गयी है, इसे हमें जड़-मूल से खत्म करना है। तभी देश तरक्की के नये आयाम स्थापित करेगा।' मंत्री जी के इस कथन में चमचों ने नया चिंतन महसूस किया। अतः उन्होंने समर्थन में जोरदार तालियां बजायी, जय-जयकारों के नारों से आकाश गूंज उठा। मंत्री जी अथाह समर्थन पाकर अपने मन में फूले नहीं समाये, अपने को श्रेष्ठ मंत्री समझने लगे।

भाषण के पश्चात वे मंत्री जी माँ के दर्शन करने मंदिर में गये। अभी वे मंदिर की सीढियां चढ़ ही रहे थे कि सीढियों पर बैठे भिखारियों की लाइन देखकर तिलमिला उठे। उन्होंने एक भिखारी से पूछा, 'तुमलोग भीख क्यों मांगते हो?'

'इस पापी पेट के लिए..' लाचार भिखारी ने अपना पेट दिखाते हुए कहा।

'क्या पेट की भूख मिटाने के लिए मेहनत-मजूरी नहीं कर सकते हो?' मंत्री जी ने पूछा तो भिखारी निश्चंत होकर बोला, 'जी नहीं, जब इस देश के बड़े-बड़े नेता भीख मांग रहे हैं तो हम काम क्यों करें?'

भिखारी की बात सुनकर मंत्री जी असंमजस में पड़ गये। अतः डांटते हुए बोले, 'तुम कैसे कह सकते हो कि नेता भीख मांगते है?'

'हुजूर, अंतर्राष्ट्रीय बाजार से कर्ज लेना भीख मांगने के सामान ही तो है।'

उस भिखारी का तटस्थ व्यंग्य देखकर मंत्री जी का चेहरा जर्द हो गया और वे बिना कुछ बोले चुपचाप मंदिर की सीढियां चढ़ने लगे। शायद उन्हें अपने प्रश्न का समाधान मिल गया था।

शीतला गली
जवारा (म० प्र०)

'वर्तमान संदर्भ' यहाँ भी उपलब्ध है..

✡ मार्डन बुक डिपो
फिरायालाल के सामने, राँची

✡ अवधेश शर्मा
सह-संपादक 'नवजीवन'
'अक्षराय', रामतापुरम, दीपूगढ़ा
पो० बा० न०-27, हजारीबाग-825 301

✡ ब्रज नंदन वर्मा
बैंक रोड सुतापट्टी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

✡ डॉ० अनसूया अग्रवाल
क्लब वार्ड, महासमुंद (छ० ग०)

✡ प्रतापसिंह सोढ़ी
सेवा निवृत प्राचार्य
5, सुख शांतिनगर
विचौली हप्सी रोड, इंदौर

✡ सरबजीत सिंह
विकास अधिकारी
ए-27/3 वेदनगर
नाना खंड़ा बस स्टैंड के पास
उज्जैन (म. प्र.)

✡ कुलवंत सिंह पंजाबी
द्वारा - रणजीत सिंह वेंदी
2 पटवर्धन मार्ग, देवास (म० प्र०)

✡ रवनीत कौर बैयर
ईदगाह, भोपाल (म० प्र०)

✡ कनक लता
चन्द्रविहार कॉलोनी, बरवा रोड
धनवाद - 826 001

✡ वीरेन्द्र नारायण झा
कैचेट फर्मास्युटिकल्स लि०
एक्जीविशन रोड, पटना - 800001

✡ प्रा० कृष्णा खत्री
ए/२५, हाइवे दर्शन सो.
तीन हाथ नाका, ठाणे
ठाणे - 400 604

✡ सर्वे स
103 -डी/26, डी. डी. ए. फ्लैट
सराय काले खान, नई दिल्ली - 110013

फ़िक्र

✍कृष्ण स्वरूप पाण्डेय 'निर्बल'

मंगरू जन्म के कुछ ही वर्षों बाद से मजदूरी करने लगा था। पहले उसका बाप मजदूरी करता था। आज वह नहीं है, पर वह है जो बाप से विरासत में मिली मजदूरी को करने जाया करता है। उसे अपना बचपन याद आता रहता है। वह पहले अपने बाप के साथ मजदूरी करने जाया करता था और छोटे-मोटे काम किया करता था। आजादी की पहली किरण उसने भी देखी थी। उसे उस वक़्त एक रुपया रोज़ मिलता था। आज आजादी मिले पचास वर्ष से अधिक हो गये, उसे अब एक सौ रुपये रोज मिलते हैं पर वैसी खुशी का माहौल घर में दिखाई नहीं देता है जो बाप की पगार तले एक रुपये की रोज़ की पगार में पाता था। आज आजादी के पचास वर्षों के बाद उसकी आमदनी सौ गुना बढ़ी है, पर उसे कपड़े के दूसरे जोड़े तथा अगले दिन की रोटियों की फ़िक्र से निजात नहीं मिली। पहाड़ सा भविष्य खड़ा है राई से वर्तमान के सामने। हालांकि वह दो बेटियों के हाथ पीले कर चुका है तथा एक बेटे की बहू भी ला चुका है, फिर भी घर में बीमार पत्नी के अलावा एक बेटी कुवाँरी है और दो बेटों को पालने-पोसने बड़ा करने की जिम्मेवारी सर पर है।

उसे बीता बचपन याद आता है, जब उसका बाप मात्र एक आम आदमी था। लेकिन आज वह एक आम आदमी के साथ एक वोटर भी है। भले ही उसे वोट डालने का मौका ही नहीं मिलता। हालांकि चुनाव के दिनों में आम छुट्टी होती है, पर मजदूरों के नसीब में छुट्टी कहां? मजदूर को रोज कमाना है और रोज खाना, अगर एक दिन भी काम नहीं मिले तो रात की रोटी भले ही मिल जाए पर सुबह को खाली पेट और खाली हाथ ही काम की तलाश में जाना पड़ता है चाहे चुनाव हो या ईद-बकरीद। काम की कोई शर्त नहीं, मिले या नहीं मिले पर जरूरी है उसकी तलाश में जाना। यही सोचते-सोचते वह साइकिल की ओर बढ़ा ही था छोटी बेटी बोल पड़ी, 'अब्बू! रात की रोटियां थैले में रख दी हैं, याद करके खा लेना। और हाँ अब्बू, याद करके अम्मा की दवा लेते आना, रात भर खांसती रहती है।'

बेटी की बात सुनकर मंगरू का चेहरा फ़िक्र से बुझ गया। सौ रुपये की पगार, उसमें बीवी की दवाई, खाना, कपड़ा और बच्चों की पढ़ाई कैसे हो? फिर काम का भी कोई भरोसा नहीं, कभी मिलता है कभी नहीं। पता नहीं आज भी काम मिलेगा या..? मंगरू के चेहरे पर छायी चिंता की लहर को देखकर उसकी बीवी ने उसे इशारे से उसे पास बुलाया और कहा, 'तुम मेरी फ़िक्र न करना, बीमारी का क्या, आप आती-जाती है। तुम बस, बच्चों का ख्याल करो, वे पढ़-लिख जाए तो समझूँगी कि मैं ठीक हो गयी।' कहते हुए बीवी ने आँखें बंद कर ली। मंगरू ने बेचारगी भरी निगाहों से पत्नी को देखा और उसकी दवा, रोटी और बच्चों की पढ़ाई की फ़िक्र समेटे काम की खोज में निकल पड़ा।

✉ 'नागरी भवन' बंदरिया बाग, सूफीपुरा
बहराइच - 271 801 (उ०प्र०)

कीमत

✍ अनिता रश्मि

'चल यार खस्सी गिरा ही दे।' एक दोस्त ने दूसरे से कहा तो दूसरा बोल पड़ा, 'ना बाबा ना, खस्सी गिराने में बहुत पैसे कट जाएंगे। लेकिन तू खस्सी की मांग क्यों कर रहा है?'

'तूने अपने दुश्मन रवि का सफाया कर दिया न, इसलिए...'

'दुश्मन...? वह मेरा दुश्मन थोड़े ही था। हम तो पहले कभी मिले ही नहीं थे।'

'तब क्यों मारा तूने उसे?'

'अरे बड़ा भाव मार रहा था। मैं रंगदारी वसूल रहा था कि अकड़ गया साला। मैंने भी लगा दिया चाकू सीने में, बस हो गया काम तमाम।'

'अच्छा तूने रामप्रसाद के पूरे खानदान को काट डालने की कसम खायी है न?'

'हाँ, यह बात तो सही है।'

'लेकिन क्यों?'

उसके बाप ने नाली के कारण मेरे बाप से झगड़ा किया। मेरे बाप की गाली के जवाब में गाली दी। बस, मैंने भी कसम खा ली कि साले पूरे परिवार को काट डालूँगा।'

'तब तो खस्सी जरूर...'

'अरे नहीं यार! अभी तीन-चार सौ कट जाएंगे। मैं खस्सी नहीं काट सकता। लेकिन साले रामप्रसाद के सारे खानदान को काट कर ही दम लूंगा।' उसने मूंछों पर ताव दिया कि अब उसकी मूंछे बच जाएगी।'

✉ नवल भवन
चर्च रोड, राँची।

धूर्त सपने का यथार्थ

✍ अवधेश शर्मा

वैसे तो इस कथा का 'नेचर' लोक-कथा से मिलता-जुलता है और 'तैयार' भी किया गया है उसी को आधार बनाकर, परन्तु आज के परिवेश में, विश्व की राजनीति के चरित्र में यह कथा पूरी तरह प्रासंगिक है।

तो बात ऐसी है कि तीन अच्छे और आधुनिक चरित्र के दोस्त - डोमन, रमेश और दिनेश - ने मन बहलाने के लिए आपस में चंदा इकट्ठा करके पिकनिक का प्रोग्राम बनाया और इसका 'मेनू' रखा मुर्गा और पुलाव।

तो भाई साहब, मुर्गा भी बन गया और पुलाव भी। 'करेन्ट' संस्कृति के अनुसार बगैर शराब के मुर्गे की उपयोगिता संदिग्ध थी, इसलिए शराब की भी व्यवस्था कर ली गयी। फिर क्या था! मुर्गे और पुलाव का तीनों ने शराब के साथ जमकर खाया-पीया और आनंद उठाया।

लेकिन मुर्गा-पुलाव इन तीनों के खाने से अधिक बन गया था। सो, भरदम खाने के बाद भी वह बचा रह गया। तब इन तीनों दोस्तों ने मुर्गे-पुलाव को ठिकाने लगाने के लिए प्रजातांत्रिक तरीके से यह निर्णय लिया कि बचे हुए मुर्गे-पुलाव को ढ़ककर रख दिया जाय और रात में जो सबसे बेहतरीन स्वप्न देखे, सुबह में मुर्गा खाने का वही अधिकारी हो।

प्रस्ताव अच्छा था, इसलिए तीनों ने इसे सहर्ष मान लिया और शराब के नशे में आनन-फानन में ही सोने के लिए खाट पर चले गये।

दिनेश और रमेश तो दारू के नशे में तुरंत सो गये, परन्तु डोमन की आँखें तो खाट पर पड़े रहने के बाद भी मुर्गे की डेगची पर ही जमी हुई थी। लाख प्रयत्न कर लिया उसने सोने का, परन्तु सफलता नहीं मिली। कभी इस करवट तो कभी उस करवट। कभी उठकर बैठ जाना और फिर तुरंत ही उद्विग्न होकर सोने का प्रयास करना - यही नियति बन गयी थी डोमन की। आखिर जब रात आधी गुजर गयी और उसकी आँखों में नींद का कतरा तक नहीं उतरा तो वह अपना धैर्य खोकर चुपके से उठा, मुर्गे के बरतन को उठाया और चुपचाप बिना आवाज किये डेगची का सारा मुर्गा मित्रों के सोए हुए चेहरों को करुणापूर्ण भावों से देखते हुए - चटखारे लेकर खा गया- 'माफ करना दोस्तो! अब और रहा नहीं जा रहा। देखो, अच्छे-अच्छे स्वप्न सुबह सबेरे मुझे भी बताना। सुबह-सवेरे ईश्वर तुम्हारे मन को शांति और हृदय में ताकत दें। खुदा हाफिज!' और फिर अच्छी तरह से हाथ-मुंह धोकर उसने डेगची को यथास्थान रखकर वैसे का वैसा ही ढ़क दिया और खुद चादर से मुंह ढ़ककर गहरी नींद सो गया।

उधर सुबह के पांच बजते-बजते रमेश और दिनेश हड़बड़ाहट में अपनी-अपनी चादरें फेंक विद्युत गति से नींद से निकले, खाट के अंदर पड़ी डेगची का मुआयना किया और संतुष्ट हो गये कि 'बिल्ली' के प्रकोप से मुर्गा साफ बचा हुआ है, तब जाकर इत्मीनान से जम्हाई लीं उन्होंने। रात के अपने सपने को याद करते हुए दोनों ने डोमन की ओर निगाहें घुमाई तो देखा कि वह मनहूस अब तक ज्यों का त्यों सोया पड़ा है। दोनों को डोमन की लाचारी और निकम्मेपन पर तरस भी आया, 'हाय! देखो तो, भैंसे जैसा कैसे सोया पड़ा है! स्वप्न क्या कपार देखेगा? अरे स्वप्न देखने के लिए भी दिमाग चाहिए।' और फिर रमेश ने डोमन की चादर को उपहासात्मक मुद्रा में खींच दी और बोला, 'अरे उठो यार! सुनाओ न अपना स्वप्न.... क्या देखा? लेकिन इतना जान लो कि मुझसे बेहतर स्वप्न तुम दोनों में से किसी ने नहीं देखा होगा।'

सार्थक नींद पूरी कर लेने के बाद डोमन ने अपनी आँखें खोली, फिर नकारात्मक स्टाइल में अपने ललाट को दोनों हाथों से पकड़ते हुए अपनी नजरें चुपचाप नीची कर ली। डोमन के इस तरह के अप्रत्याशित व्यवहार से दिनेश काफी प्रफुल्लित हुआ, 'क्यों भाई डोमन, क्या कोई भी सपना नहीं देखा तुमने? बोलते क्यों नहीं? बोलो, बोलो..'

लेकिन डोमन को नहीं बोलना था, नहीं बोला। अपने ललाट को दोनों हाथों से पकड़े हुए चुपचाप रमेश के चेहरे की ओर देखता रहा।

डोमन की चुप्पी को दिनेश ने ही तोड़ा, 'रमेश! तुम ही बताओ भई कि तूने कौन सा स्वप्न देखा है? लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि मुझसे बेहतर स्वप्न किसी ने नहीं देखा होगा। मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि बचे हुए मुर्गे पर सिर्फ और सिर्फ मेरा अधिकार होगा...'

'नहीं यार दिनेश, इस मुगलाते में नहीं रहो।' दिनेश की बात काटकर चहकने लगा था रमेश, 'जितना अच्छा और भेल्यूएबल स्वप्न मैंने देखा है, तुम्हारे नसीब में वह कहां? आह! क्या 'सीन' था, कितनी महत्ता थी। वाह! मजा आ गया था। रोमांचित होता रहा था मैं। इसीलिए पूरे दावे के साथ घोषणा कर रहा हूँ मैं कि सर्वश्रेष्ठ स्वप्न के अधिकार में डेगची पर मेरा ही अधिकार होगा। देखते रह जाओगे तुम दोनों।'

'तो फिर देर क्यों कर रहे हो। बता, क्या देखा तूने?' दिनेश ने रमेश को चढ़ाया।

खुशी के अतिरेक और मुर्गे के स्वाद में खुद को डुबाता हुआ चालू हो गया रमेश - ' आह! क्या नजारा था मेरे स्वप्न का। लगा, जैसे उस वक्त दुनिया का सबसे शक्तिशाली और व्ही० आई० पी० 'पर्सन' हो गया हूँ मैं। यार, मैंने देखा कि पाकिस्तानी राष्ट्रपति अपने विशेष वायुयान से मुझसे मिलने के लिए यहाँ आए, मुझसे मिले और फिर विशेष आग्रह करके पूरे राजकीय सम्मान के साथ उसी वायुयान में बगल में बैठाकर मुझे पाकिस्तान ले गये। पाकिस्तान की धरती पर पहुँचते ही हजारों अधिकारियों ने मुझे सैल्यूट मारा और फिर आदेश की मुद्रा में मेरी ओर देखने लगे। राष्ट्रपति जी बगल में ही खड़े थे। अभी मैं उनसे कुछ बात करने ही वाला था कि क्या देखता हूँ कि अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति क्लिंटन महोदय अपने पूरे बटालियन - ओनिका, मोनिका, पामेला, दर्जन भर खूबसूरत बालाओं के साथ एरोड्रम के दूसरे छोर से निकले। क्लिंटन जी अपनी 'पार्टी' के साथ आए और मेरी बगल में खड़े हो गये। उसके बाद लालबत्ती से लैस कारों का काफिला आया और हम सबों को लेकर राष्ट्रपति हाउस चला गया। वहां भी हमारी जमकर खातिरदारी हुई। फिर मैं, क्लिंटन एण्ड पार्टी और राष्ट्रपति अंदर पधारे। अंदर का दृश्य देखकर तो भईया रोमांच की अधिकता से मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। दो-तीन मिनट तक अंदर ही अंदर मैं 'अलबलाता' रहा। फिर कठिन प्रयास के बाद जब कुछ संयत हुआ तो मैं देखता क्या हूँ विश्व का सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्तित्व लादेन साहब 'क्रूज' पर पांव रखकर रॉकेट लांचर के सहारे ऊंगठ कर बैठे हुए हैं। चेहरे पर मंद-मंद मुस्कान और आजू-बाजू हजारों की संख्या में क्लाशिनकोब, बारुदी सुरंग, ए० के० ४७, ४८, ४९, और विभिन्न प्रकार के हजारों वायरलेस सेट एवं अत्याधुनिक संचार और मारक यंत्र बिखरे पड़े हैं। बाप रे बाप! यह सब देखकर मन ही मन एक तरफ तो मैं काफी घबरा रहा था वहीं दूसरी ओर काफी गद्‌गद् भी। गद्‌गद् इसलिए कि जिस शख्स की एक झलक पाने के लिए सारी दुनिया की सरकारें हाय-तौबा मचा रही हैं, उसके साक्षात सामने मैं खड़ा हूँ। खड़ा क्या हूँ, बातचीत कर रहा हूँ।

अचानक लादेन साहब ने क्या इशारा किया कि अमरीकी 'भूत' हड़बड़ाते हुए उठे और लादेन साहब के बाजू में नीचे बैठ गये। लादेन साहब अमरीकी भूत के कंधे पर अपना आर्शीवचन वाला हाथ रख दिया - 'क्यों साहब! और सब तो ठीक-ठाक चल रहा है न। आपके पूर्ववर्ती 'भूत' बुश, जो हमारे 'आका' हैं, की कैसी तबीयत है? सुन रहे हैं कि आज-कल वे अपने 'छोरे' की सनकमिजाजी' से कुछ खफा है? भेंट हो उनसे तो बता दीजिएगा कि बुढ़ापे में वे आराम से रहें। वो जो उनका 'छौना' है न, क्या नाम है उसका, शायद 'छौना' बुश, उसको हम 'समझा' देंगे कि अपने बाप की 'कमाई' पर लात मारकर उन्हें 'जलील' नहीं करें। अन्यथा हम अपने 'गुरू' की बेइज्जती बर्दाश्त नहीं करेंगे, चाहे वह उनका 'छौना' ही क्यों न हो। वैसे अफसोस तो है ही कि हमारे गुरु का बेटा, जो हमारा 'गुरुभाई' ही हुआ, आजकल ज्यादा 'ड्रामा' कर रहा हैं। तो अमेरीकी भूत साहब, जाईए आराम कीजिए। और हाँ, मेरा यह संदेश मेरे 'आका' और उनके 'छौने' को जरूर दे दीजिएगा।

उसके बाद लादेन साहेब फिर हमारी ओर मुड़े और बड़े अपनत्व से मुखातिब हुए - 'बालक, डरने या चिंता करने की बात नहीं है। अभी दुनिया में जो 'ड्रामा' चल रहा है, वे हाथी को दिखाने वाले दांत हैं। सारी दुनिया पर रौब जमाने के लिए वह ऐसा कर रहा है। हफ्ते भर में खुद ठंडा जाएगा। वैसे मेरे 'आका' साहब भी अपने छौने को समझा ही रहे हैं। खैर, छोड़ो उन बातों को। तुम्हें जिस चीज की जरूरत, हो दिल खोलकर मांग लो। यह क्लाशिनकोब,

ए० के० ४७ रायफल, रॉकेट लॉचर, वायरलेस सेट, क्रूज मिसाईल या फिर क्लिंटन साहब की पार्टी का कोई भी मसाला - ओनिका -मोनिका, पामेला -जिसे चाहो ले जाओ। क्लिंटन साहब भी हमारे 'चेले' रह चुके हैं। कुछ नहीं बोलेंगे। जरूरत पड़ने पर दस-बीस करोड़ डालर नगद भी दे देंगे। जितना ले जा सकते हो, ले जाओ।' रमेश ने धड़क रहे अपने सीने को नियंत्रित करते हुए अपनी विजयी मुद्रा मुर्गे की डेगची पर जमाते हुए बोल उठा - 'अब बोलो भाई-बंधु लोग! इससे भी सुन्दर वजनी, जानदार, मालदार, दमदार और भैल्यूएबल स्वप्न और कोई हो सकता है?'

'तो मैंने भी कोई 'मुरदघट्टी' वाला स्वप्न नहीं देखा यार!' अपनी आँखों की संतुष्टि के लिए मुर्गे की देगची पर नजर जमाये बोलने लगा दिनेश, 'कैसे वर्णन करूं मैं अपने स्वप्न का! इतना मजा आया कि पूछो मत। अधिकार और आनंद का समझो कि जीता-जागता उदाहरण बना हुआ था मैं। यार, तूने तो 'देशपति' और 'प्रक्षेपास्त्रपति' के साथ बैठकर सुख, आंनद और गौरव का जश्न मनाया न, मैं तो सीधे-सीधे अपने देश का प्रधानमंत्री ही बना हुआ था। सुरा और सुंदरी की कौन पूछे, मैं तो हीरे-जवाहरात और हजार-हजार की गड्डी पर बैठकर इस कदर राजनीति कर रहा था कि धाकड़ से धाकड़ राजनीतिज्ञ भी मुझसे आँख नहीं मिल पा रहे थे। पूरा देश मेरी अंगुलियों पर नाच रहा था और देश के अंदर अवस्थित सारे चल-अचल जीवों को मैं अपनी इच्छानुसार नचा रहा था। सर्वत्र मेरी ही चर्चा थी, धूम थी। मेरी जय-जयकार हो रही थी और बड़े-बड़े सेठ-साहूकार, मंत्री, पदाधिकारी खाद के बोरों में हजार-हजार की गड्डियाँ भरकर मेरे चरणों में समर्पित किए जा रहे थे। मैं उन्हें डांट रहा था कि अरे मूर्खों, यह सब यहां क्यों ला रहे हो? जाओ, सब मेरे नये घर में संभाल-संभालकर रख आओ। क्या बताऊँ रमेश! मेरे अधिकार के सामने देश के सारे व्यक्तित्व बौने नजर आ रहे थे और मैं सबके लिए पूज्यनीय बना हुआ था। अहा! क्या 'सीन' था। मैंने अपनी तेईस पीढ़ियों के लिए अकूत राशि जमा कर रखी थी, ताकि उन्हें कोई श्रम या काम न करना पड़े। जिधर नजर जातीं, सिर्फ हमारा ही साम्राज्य था।' अर्थ की अधिकता के स्मरण से रमेश और डोमन को लगा था जैसे दिनेश की आंखें भी बोल रही हों। लेकिन नहीं, उसकी आंखें तो डेगची के अंदर पड़ी मुर्गे की टांग से शायद बात-चीत करने का प्रयास कर रही थीं।

रमेश और दिनेश ने तो अपने-अपने सर्वश्रेष्ठ स्वप्न सुना दिये थे। दोनों के स्वप्न एक से बढ़कर एक थे। किसी कोने सें रमेश का स्वप्न ज्यादा दमदार था तो किसी 'एंगल' से दिनेश का। निर्णय के लिए अब सिर्फ डोमन के स्वप्न की प्रतीक्षा थी। क्या पता, शायद डोमन का स्वप्न इन दोनों स्वप्नों को अपनी खूबसूरती और 'साइनिंग' से धराशायी कर दे।

तो जल्दी निर्णय के लिए दिनेश ने डोमन को ललकारा - 'बोल मेरे भाई, तेरा स्वप्न क्या है? बता जल्दी। तब न निर्णय हो सके कि किसके पल्लो डेगची का भाग्य बंधा है।'

बेचारा डोमन! सिर्फ हल्की सी अपनी नजरें उठायी और डेगची पर टिकाकर कराह सा उठा - 'क्या बताऊँ मैं? मेरे लिए तो कहने के लिए कुछ भी बाकी नहीं रहा।' डोमन की असहायता देखकर दिनेश की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। मन ही मन अनुमान लगा लिया उसने कि मजबूरी स्पष्ट कर दे रही कि वह तो स्वप्न के मामले में गया काम से। डेगची पर सिर्फ हमारा ही अधिकार बन रहा है। फिर भी डोमन की हौसला - अफजाई के लिए बेमन से ही बोल उठा दिनेश - 'अरे भाई, कुछ तो बताओ कि आखिर तुमने कौन सा स्वप्न देखा? अगर नहीं बताओगे तो निर्णय कैसे होगा? बोल भाई, जल्दी बोल!'

'हाँ, हाँ डोमन, बता क्या देखा तूने? घबड़ा मत! जो देखा है, उसे ही बयान कर दे ताकि जल्दी से निर्णय हो सके।' रमेश ने भी डोमन को ललकारने में कोई असर नहीं छोड़ी।

'क्या बताऊँ यार! मुझे तो अपने स्वप्न की भयंकरता को बताते हुए अभी भी डर लग रहा है। लेकिन जब तुमलोग मेरे ऊपर पिल ही पड़े हो तो मुझे वर्णन तो करना ही पड़ेगा।' अपनी आवाज़ को मरियल सा बनाते हुए कहना शुरू किया था उसने- 'मैं किसी अच्छे स्वप्न की प्रतीक्षा में गहरी नींद में सो रहा था। रात के लगभग बारह बजे होंगे। अचानक मेरे पैरों पर किसी ने मजबूती से प्रहार किया। दर्द और भय की अधिकता से मेरी नींद खुल गयी। बाप रे बाप...! क्या देखता हूँ कि लगभग पचास की संख्या में कट्टर आतंकवादी लोग तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित मेरे सामने खड़े हैं। उनकी लाल-लाल

आँखें मेरे चेहरे पर टिकी हुई है। अभी तक उनकी ओर से किसी ने कहा कुछ नहीं था, परन्तु उनका रूप देखकर मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी थी। मैं तो कुछ भी सोचने की स्थिति में नहीं था, तभी आतंकवादी के सरदार ने फरमान जारी कर दिया – 'ए डोमना, चल उठ। लगता है मुर्गा बनाने में तुम 'एक्सपर्ट' हो। बहुत अच्छी खुशबू आ रही है। चल मेरे साथ हमलोगों के लिए तुम मुर्गा बनाना।'

'मैंने अपने दोनों हाथों से कान पकड़कर कसम खायी कि हे सरदार साहब, सच कहता हूँ, मुझे मुर्गा क्या, मुझे तो बात बनाने भी नहीं आता। मुर्गा तो मेरा दोस्त रमेश अच्छी तरह बनाता है।'

तभी सरदार के बगल में खड़े एक रायफल धारी ने कहा – 'अबे निकाल डेगची से मुर्गा! हम सब खाएँगे..'

फिर मैंने हाथ जोड़ दिये, 'खाईये माई-बाप! खाईये... लेकिन थोड़ी देर पहले आते तो खाने में मजा भी आता। मैं तो समझता हूँ कि डेगची में मुर्गा के नाम पर अब 'अचड़म-कचड़म' बचा है, वह भी झूठा। अब बताइये सरकार, क्या आप झूठा खाएँगे?'

सरदार ने अपने रायफलधारी को डांटते हुए कहा, 'अबे मुर्गा तो ये लोग पहले ही खा गये, अब क्या झूठन खाओगे! छोड़ो मुर्गे को... इसी को लेते चलो, सामान वगैरह ढोएगा।'

'सच कहूँ यार, उस वक्त तो मुझे लगा था कि इन आतंकवादियों के चंगुल से मैं मुक्त नहीं हो पाऊँगा। वैसे भी, पता नहीं, कब इनका मन बदल जाए और ठांय कर दे तभी मेरी चेतना जैसे जागरूक हो उठी – 'सरदार साहब! आपके आदेश को टालने की जुर्रत मैं कैसे कर सकता हूँ। भगवान ने मुझे अगर लंगड़ा नहीं बनाया होता तो मैं आपके पीछे-पीछे अवश्य चलता। लेकिन सरकार मेरा दुर्भाग्य कि मैं चल नहीं सकता। अब जैसा आपका आदेश!'

पता नहीं, सरदार के दिमाग में कौन सी बात आयी कि एगबारगी ही वह चिल्ला उठा, 'ठीक है, तुम चल नहीं सकते तो खा तो सकते हो। जल्दी से डेगची के अंदर पड़े मुर्गे को खा जाओ। यही मेरा आदेश है...'

'सच कहता हूँ यार! मैंने उनसे काफी विनती की कि हे सरदार! इस डेगची पर हम तीनों दोस्तों का समान अधिकार है। इसलिए मुझपर रहम कीजिए, मुझे अकेले ही मुर्गा खाने को मत कहिए...'

'मेरा इतना बोलना था कि सरदार जी गुस्से से लाल हो गये और बोले, 'मेरे आदेश की अवहेलना की कीमत शायद तुम नहीं जानते। अभी तो मैं तुम्हें सिर्फ मुर्गा खाने के लिए बोल रहा हूँ। अगर एक मिनट के अंदर मेरे आदेश का पालन नहीं हुआ तो गोली खाने के लिए मजबूर हो जाओगे। अब मर्जी तुम्हारी कि गोली खाओ या मुर्गा।'

तब विवशतः अपनी जान बचाने के लिए सरदार जी का आदेश मानना पड़ा और डरते-डरते डेगची में पड़े मुर्गे को मैं उसी वक़्त खा गया। अब तुम्हीं बोलो यार कि मैं क्या करता? अगर मुर्गा नहीं खाता तो गोली...'

'धत् तेरे की! तो तुमने हमलोगों को क्यों नहीं जगाया..?' दिनेश ने कहा तो डोमन ने रुआंसा चेहरा बनाते हुए कहा, 'अब मैं क्या करता मेरे दोस्त! तुम दोनों में से एक पाकिस्तान में था और दूसरा दिल्ली के ऐश्वर्य भवन में। जबकि मेरी जान सांसत में पड़ी थी। अब उतने समय में पाकिस्तान जाता या दिल्ली, या फिर सरदार जी का आदेश मानकर अपनी प्राण रक्षा करता। बता भाई, तू ही बता। और क्या करता मैं...?' बोलते-बोलते डोमन ने ढककर रखे गये मुर्गे की खाली देगची को दोनों दोस्तों के सामने बेरहमी से उलट दिया।

बेचारा दिनेश और रमेश, दोनों की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। बस, नजर आ रही थी तो पाक राष्ट्रपति का भवन और दिल्ली का ऐश्वर्य दोनों का मुंह चिढ़ाती हुए खाली देगची, जो अपने अस्तित्त्व का आभास दिलाती हुई उन दोनों की ओर लुढ़की चली आ रही थी, जिसे मांजना भी दिनेश और रमेश को ही था।

'अक्षराय' को-ऑपरेटिव कॉलोनी, दीपूगढ़ा
पो० बॉ० न० – 27, हजारीबाग – 825 301

'वर्तमान संदर्भ' में महत्त्वपूर्ण साहित्यिक समारोह / आयोजन / सम्मेलन / पुरस्कार संबंधी सूचनाओं को भी स्थान दिया जाता है।

सिद्धेश की लंबी कविता

मुक्ति पर्व/1998

'मेरी कथा यात्रा' के इस पड़ाव तक आकर
आज स्तब्ध हूँ।

मैंने अपने को निमित्त मानकर
अबतक किया जो भी
हाशिये पर ठेल दिया गया सब।
एक वर्जना, एक दहशत
यंत्रणा और तिरस्कार को
अपने कंधे पर ढोता
लड़ाकू जानवरों की तरह
शहर धूमता रहा/चालीस साल
अपनी जानदार नखों से खरोचता हुआ
यादों के असंख्य जीवाणुओं को जो
धीरे-धीरे मेरे मांस – मज्जा
मेरे भीतर रेंगते रक्त प्रवाह को
चूसते रहे, खाते रहे अबतक।

जीवन के साठ साल पूरे करने की ललक में
क्या मैं जीवित रह पाऊँगा?
हाँ, मैं भूल गया उन सालों की गिनती को
मुझसे हमेशा भूल होती रही –
यादों को गिनते-गिनते भूल गया कि
मैंने जिन्हें चाहा था,
वे एक-एक कर दरकिनार होते गये
और मैं अकेला शहर भर में घूमता
यादों के उन जीवाणु की पोटली
ढोते-ढोते थक गया / मैं
आज स्तब्ध हूँ।

'मेरी कथा यात्रा' अब देह गाथा में परिवर्तित
होकर मुझे डराती है
झकझोर कर कहती है,
अब क्या रखा है इन सब चीजों में
लगातार दिमागी – क्षरण की इस बेला में
तैयार हो जाओ मृत्यु दंड के लिए!
दोस्तों, मुझे क्षमा करना कि
मैं अपने से भयभीत, डरा हुआ
बेसाख्ता भागता हुआ/दण्ड भोगी की तरह
जंगल, नदी, पहाड़ की वर्जनाओं को भोगता हुआ
आज मृत्यु-दंड के लिए तैयार हूँ!

यादों के चकव्यूह से निकलकर भी
नहीं आया मुझे सर-साधन कि
अपने दुश्मन को सामने पाकर
उसका सिरोच्छेद करूं या फिर
इसी चक्रव्यूह में फंसकर
रक्ताक्त अपनी देह के लिए
प्रार्थना करूँ कि
मुझे अमृत दान दो!

मैंने अपनी ही हत्या की है
बार-बार/असंख्य बार
चाहकर भी नहीं क्षमा किया अनेक बार
अपने आप को
शाप मुक्त नहीं हो पाया अबतक।

अंकुश लगते रहे मेरे किये पर
कैदी की तरह सलाखों के भीतर
मनो-भर जंजीरों से जकड़ा
कैदखाने में अपने ही रक्त को पीता रहा/जीता रहा
व्यंग्य-वाण चलते रहे मुझ पर
रोजमर्रे को गीतांतर करता
मन के किसी कोने में दुबका
अपने ही तन-मन से निष्कासित कर दिया गया
सांस से सांस का ऋण चुकाता रहा
आज मुक्त हूँ कैदखाने से
अपना दंड भोगने के लिए।

आकाश – बातास निस्पृह हैं
शहर अनुपस्थित है मेरे लिए
मैं शहर के लिए नहीं
शहर मेरे भीतर समा गया है
लोग भाग रहे हैं उस बेध-शाला की तरफ
जहां मुझको मृत्यु दंड दिया जाएगा।

मैं उल्लसित हूँ,
इस मुक्ति-पर्व के क्षणों में
यादों को दफना आया हूँ
आज रिक्त हूँ
सिक्त हूँ!

O

संपर्क : श्रीपुर, पो० – मध्यमग्राम
बाजार मध्यमग्राम – 743 298
24 परगना (उत्तर)

दो कविताएँ

आज जम्मू बंद है

♦ महाराजकृष्ण भरत

वे आते हैं बेरोक-टोक
भेदते हमारे सुरक्षा कवच को
रसोई घर से शयनकक्ष तक
रौंदते है हमारे जीवन की हर खुशी
परोस देते हैं भोजन की थालियों में
एके -47 रायफलों की गोलियाँ
चूल्हे की आंच पर अधपक्के भोजन में
गिरा देते हैं हथगोले
भूखे पेट ही सदा के लिए सो जाते हैं -
खाट पर फटेहाल सुस्ताते
दिहाड़ी मजदूर और उनके बच्चे।

अम्मां रसोई घर में
खुद ही पक रही है
खून से लथपथ है शिवलिंग का
पावन स्थल
साधुओं के वेष में झुग्गी बस्ती में
घुस आए हैं
बहरुपिए।

चीत्कार कर जीवंत हो उठते हैं
हमारे सामने
नरसंहारों के अनेकानेक मर्मातक दृश्य
कोसते हैं हमें
संग्रामपुरा, वंदहामा, छट्ठीसिंहपुरा
पर्णकोट, रघुनाथ मंदिर
रेलवे स्टेशन
कालूचक्क बस हत्याकांड
हम हड़ताल का आह्वान कर
पा लेते है संतोष
हमने हत्यारों पर पा ली है विजय।

इससे पहले
मुशर्रफ के जलाये जाएं
पुतले
शहर में कर्फ्यू का
सायरन बज जाता है।

आते हैं हमारे संरक्षक
हर हत्याकांड के बाद
यही कहते विदा होते हैं
हमने जांच कमेटी कर ली है गठन
धर-दबोचा जाएगा नरभक्षियों को।

अब भी जारी है हत्याकांडों का यह क्रम
नकाबपोशों को मिले हैं अधिकार
किसी भी लौ को बुझाने के
और संसद मौन है
13 दिसम्बर के बाद भी।

○

संपर्क : शारदा कालोनी - 48/6
पटोली ब्राह्मणा, मुट्ठी जम्मू-81205

बेकारी की समस्या

♦ डा० जा आर्शिवादम्

काम दिलाऊ दफ्तरों में
'प्रविष्टि'
की संख्या बढ़ती जा रही है
तो उसपर
संतुष्ट ही रह जाना चाहिए कि
देश कितना पढ़ा-लिखा बना हुआ है
फिर भी
उनमें से कितनों को नौकरी मिली?
कितने नौकरियों में डटे रहे?
और उनमें से कितने
हड़तालों में शामिल नहीं हुए?
यें बातें भी हैं न सोचने की!

संपर्क : ८, कलैमगल, पूंतमल्ली
चेन्नई- 600 056

रणविजय सिंह की तीन कविताएँ

होड़

सड़क पर लगती है वाहनों की होड़
दाएं-बाएं
आड़े-तिरछे
निकल भागने की चतुराई में
घड़ी-घड़ी लगता है जाम
मुख्य सड़क हो या संपर्क मार्ग
पल-पल होती है जिन्दगी नाकाम
आंख, नाक, मुंह से विषैला धुआं लेकर
कान को चीरते तेज हार्न
और स्टीरियो के कानफाड़ू गाने सुनकर
देह-दिमाग से मुर्दा बना आदमी
अकबकाया हुआ लौटता है घर
छाती पकड़ खांसता है बुरी तरह
चीखता है बीवी-बच्चों पर बात-बेबात
कराहता है सिरदर्द
बदन दर्द से रात भर
आधी नींद में होती है
फिर जाने की हड़बड़ी
नौकरी, दुकान और व्यापार की मजबूरी
बोझिल मन और टूटती देह को
थके पैरों पर थामता
आदमी उतरता है सड़क पर
जहां होती है वाहनों में होड़
पल-पल जिन्दगी नाकाम!

○

भूख

दिन-ब-दिन लोगों की भूख बढ़ती जा रही है
कुछ भी खा लेने से परहेज नहीं किसी को
पहले बचा-खुचा, आसी - बासी खाने वाले
चिह्नित किए जाते थे
उन्हें माना जाता था भुक्खड़ - दलिद्दर
किंतु वह एक हैसियत होती थी
आज की जैसी प्रवृत्ति नहीं
हां, सचमुच भुक्खड़ हो गये हैं लोग
दलिद्दरी छा गई है हर तरफ
सिर्फ रोटी-दाल से पेट नहीं भरता किसी का
सबको चाहिए हरे-नीले नोट
कड़े और साफ न हों तो तुड़े-मुड़े भी रख लेते हैं
गड्डी न हो तो खुदरा भी बटोर लेते हैं
घड़ी-घड़ी सब्जी-चावल पर मुंह बिचकाने
वाले को देखिए
जूठी थाली में रखी मुर्गे की टांग
काकटेल का गिलास
वे दांत निपोरते हुए हाथ बढ़ा देंगे
कपड़े-लत्ते, साबुन - तेल से लेकर
पेट्रोल-डीजल तक खाने लगे हैं लोग
ईमान और मानवता की बात छोड़िए
घृणित और त्याज्य तक चट कर जाते हैं
जानकारी में मत रखिए गू-मूत वाला घर
ऐसे-ऐसे खवैया है कि देखते-देखते दलाली कर लेंगे
और आपको भनक तक नहीं लगेगी
पैथोलोजिस्ट तक को देने के लिए के लिए नहीं छोड़ेंगे।

○

डर

दूर की कौड़ी कहते हैं
कामगारों का बुलंदियां हासिल करना
काम करने वाले हाथों के बूते मलाई मारने वाले,
सत्ता और शक्ति के सारे स्रोत उनकी पकड़ में हैं
उनके दायरे बड़े
और आभा अजस्त्र सूत्रमयी है, उनका मानना है
वे रोक सकते हैं पक्षियों के चहचहाने
बकरियों को मिमियाने से
खुला छोड़ सकते हैं घड़ियालों, सांड़ों को
खुली कीमत देकर;
भयानक अस्त्र-शस्त्रों वाले
सहस्त्र हाथों की मारक जुगलबंदी करती हैं
उनकी चिकनी-चुपड़ी शक्ल
होठों से निकले जंगल विधान,
खेतों - खलिहानों पर आँखें गड़ाए पटवारी
खानों-घाटियों में जमें कारिन्दे
थानों - कचहरियों में डटीं कुर्सियां
हैं उनकी खनखनाती जेब की हद में, उनका दावा है
इसलिए नैतिकता उनके ठेंगे से
ईमानदारी उनकी जूती तले
हालांकि शक है उन्हें दिखावे की व्यस्तताओं
और चकाचौंध में उलझी अपनी उनींदी आँखों पर
कि शातिर दिमाग और
कठोर हृदय के साथ तारतम्य नहीं बिठा पाई, तो
कहीं मुट्ठी भींचे हाथ आसमान को न छू लें
क्योंकि पूरी नींद से जगे होते हैं वे
ताजे और तप्त लहू से लबालब
जो जिन्दगी से मोह तो रखते हैं
मगर मौत से डरते नहीं
और शायद.. यही होती है बुलंदी।

संपर्कः संपादकीय विभाग, अमर उजाला, इलाहाबाद

साहित्य में 'बोल्ड लेखन' के नाम पर परोसी जा रही अश्लीलता कहाँ तक उचित?

साहित्यकारों से क्या कहना! वे संवेदनशील होते ही हैं। लेकिन संवेदनशीलता की धारा जब अभद्र लगने लगे तो समाज के लोग उसे अस्वीकारने लग जाते हैं। आजकल साहित्य में ऐसी अनेक रचनाओं के दृष्टांत देखे जा सकते हैं जिसे पढ़कर लोग बरबस कह उठते हैं कि यह रचना अश्लील है! लेखक कहते हैं, 'यह दृष्टिकोण का तकाजा है' तथा कुछ पाठक उस लेखक की तारीफ में कह उठते हैं - वाह! यह तो 'बोल्ड' लेखन है। आज साहित्य में इस प्रकार के लेखन प्रश्न-चिह्न की तरह खड़े हैं। प्रस्तुत है कनक लता द्वारा आयोजित इसी विषय-वस्तु पर परिचर्चा, जिसमें वरिष्ठ लेखकों के विचार शामिल है। अगर पाठक वर्ग या अन्य बुद्धिजीवी वर्ग भी इस परिचर्चा में शामिल होना चाहते हैं, तो आपके विचार सादर आमंत्रित हैं। आप अपने विचार संपादकीय पते पर या कनकलता के पते पर भेज सकते हैं।

♦ **सूरज प्रकाश :** मेरा पहला एतराज तो यही है कि साहित्य में बोल्डनेस और अश्लीलता दो अलग-अलग मुद्दे हैं और दोनों को एक ही मान कर न चला जाये।

कोई रचना बहुत बोल्ड होते हुए भी जरा सी भी अश्लील नहीं हो सकती और ऐसा कतई जरूरी नहीं कि हर अश्लील रचना बोल्ड और स्तरीय हो ही। बल्कि आमतौर पर पूरी तरह से अश्लील रचनाएँ कई बार बेहद लचर, कमजोर और दोयम दर्जे की होती हैं जिनमें कलात्मक सौन्दर्य नहीं के बराबर होता है। वैसे भी विशुद्ध रूप से अश्लील कहे जाने वाले साहित्य के लेखक, पाठक और उनका रचना संसार अलग ही होता है। कथा साहित्य में इधर-उधर एकाध प्रसंग आ जाने या गाली को गाली के रूप में लिख देने भर से कोई रचना उस तरह से अश्लील नहीं हो जाती कि हाय तौबा मचायी जाये।

वैसे भी अश्लीलता के मानदंड अलग होते हैं और विशुद्ध अश्लील साहित्य का न तो कोई कमिटमेंट होता है और न कोई स्थायी मूल्य।

इसके विपरीत बोल्ड लेखन कुछ ठोस, असामान्य और कुछ विशिष्ट कहने के लिए ही लिखा जाता है और इसका लेखक कम से कम गैर जिम्मेवार तो नहीं होता। जिन्दगी में कुछ बोल्ड करने के लिए करने वाले में बोल्डनेस होना पहली शर्त होगी वरना बात कैसे कही जायेगी।

जब हम बोल्डनेस और अश्लीलता के बीच विभाजक रेखा खींच देंगे तो हमारा सवाल ज्यादा स्पष्ट हो जायेगा कि हमारी लड़ाई बोल्डनेस के खिलाफ है या अश्लीलता के खिलाफ। यहाँ हम अपने आपके जीवन में पसरी अश्लीलता और साहित्य में तथाकथित अश्लील कही जाने वाली रचनात्मकता पर ही बात करेंगे।

अश्लीलता का सवाल समय स्थान और समाज तथा व्यक्ति विशेष से भी जुड़ा होता है। एक ही समय में एक रचना एक समाज, समुदाय, व्यक्ति को अश्लील लग सकती है और दूसरे को कतई नहीं। यही बात सामाजिक स्थितियों के हवाले से कहीं जा सकती है। अभी हाल में ही मैंने अमेरिका के राष्ट्रपति को टी० वी० पर भाषण देते हुए सुना। दस मिनट के भाषण में उन्होंने कई बार फक और शिट शब्द का इस्तेमाल किया। वे अमेरिकी संसद में बोल रहे थे और पूरी दुनिया उनका भाषण सुन रही थी।

इसमें दो बातें हैं। बीस बरस पहले वहीं अमेरिका में ये दो शब्द आम बोल चाल का हिस्सा नहीं बने थे और कोई राष्ट्रपति कम से कम संसद में और टी० वी० प्रसारण में इन्हें प्रयोग करने में संकोच बरतता। आज वहां भाषा इतनी आगे बढ़ चुकी है कि ये शब्द और इनके जैसे हजारों शब्द

अपना अर्थ इतना खो चुके हैं कि अमेरिका का राष्ट्रपति तक संसद में इन शब्दों का खुल कर प्रयोग करने में परहेज नहीं करता।

अब इस बात का दूसरा पहलू। हमारा भारतीय समाज बेशक आगे आया है लेकिन इतना आगे नहीं कि कोई नेता या राष्ट्रपति संसद में अपने भाषण में इन या इस तरह के शब्दों का प्रयोग करने की हिम्मत कर सके, फिल्मों की बात और हो सकती है। हो सकता है दस बीस बरस बाद यहां भी वही स्थिति आ जाये।

दूसरी बात यह भी है कि लेखक जब कोई रचना लिखता है तो उसके सामने कुछ मानक होते हैं। अब अगर वह उन जीवंत प्रसंगों को ज्यों का त्यों ईमानदारी से साहित्य में रखने की कोशिश करता है तो हाय तौबा क्यों मचायी जाती है। लेखक समाज से बाहर का प्राणी नहीं होता। न वह समाज सुधारक या सन्यासी होता है। वह अपने आस पास से सबकुछ ग्रहण करता है और जब ग्रहण करता है तो सिर्फ भाषा को छोड़कर कुछ भी ग्रहण नहीं किया जा सकता। एक तरह तो आप कहते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है और जब वही लेखक समाज की सच्ची और जस की तस तस्वीर पेश करना चाहता है तो तकलीफ क्यों होती है। जब प्रेमचंद अपनी रचनाओं में पचास-साठ पहले अपने पात्रों से उनकी दिन-प्रतिदिन बोली जाने वाली भाषा बुलवाते हैं तो कुछ गलत नहीं करते लेकिन जब राही मासूम रजा या ज्ञान चतुर्वेदी या काशीनाथ सिंह अपने पात्रों से उनकी जिन्दगी की सच्ची भाषा बुलवाते हैं तो हाय तौबा मच जाती है।

आज हम एक बहुत ही कठिन समय में जी रहे हैं। चारों तरफ अश्लीलता का नंगा नाच देख रहे हैं। कोई भी क्षेत्र इस अश्लीलता के क्षेत्र से नहीं बच पाया है। धर्म, समाज, शिक्षा, परिवार, रिश्तेदारी, राजनीति कहां नहीं घुस आयी है अश्लीलता, हद दर्जे की बेशरमी, लज्जाहीनता और धौंस, वहां तो हम कुछ नहीं कहते लेकिन जब लेखक नासूर पर हाथ रखकर बताना चाहता है कि बंधुवर, फोड़ा यहां पर है, इसे चीरने की जरूरत है तो हाय तौबा मच जाती है कि रचना अश्लील हो गयी है। बीमारी का निदान उसे छुपाना नहीं उसे सामने लाना होता है और उसका इलाज करना होता है। दुनिया का कोई चिकित्सा शास्त्र यह नहीं सिखाता कि शरीर के उन अंगों का इलाज मत करो, या उघाड़ कर मत देखो, ये अंग गोपन हैं, उन्हें उघाड़ना अश्लीलता हो जायेगी।

आप खुद ही गवाह हैं कि आपके मुहल्ले का पुलिस वाला आपसे या किसी से भी बिना दस गाली के बात नहीं करता या कोई भी औरत थाने में सुरक्षित महसूस नहीं कर सकती या आप देखते हैं कि तीर्थ स्थान पर, अदालत के बाहर, अस्पताल में या बाजार में गरीब आदमी की लंगोट तक उतरवा ली जाती है और बदले में लात भी खानी पड़ती है, क्या ये अश्लीलता नहीं है जिसे हम रोजाना चुपचाप देखते रहते हैं और नपुंसक सा विरोध भी नहीं करते और चार छपे हुए शब्द न केवल हमारा धर्म बिगाड़ देते हैं बल्कि हमें बहू बेटियों की चिंता सताने लगती है। तब यह चिंता कहां जाती है जब आपकी बहन बेटी अकेली बाजार तक नहीं जा सकती और मुहल्ले के शोहदे उसकी राह छेके खड़े रहते हैं या बस में उसे चारों तरफ से दबाये रहते हैं तब आप क्यों नहीं अश्लीलता के खिलाफ उन शोहदों से पंगा नहीं लेते। सीधी सी बात है, न तो आपमें पहल करने का गुर्दा है और दूसरी बात शोहदों के चाकू के आगे आपकी फटती है इसलिए दूसरे के फेंटे में टांग अड़ाने से डरते हैं

अभी 14 अगस्त को महानगर मुंबई में चलती ट्रेन में चार आदमियों की मौजूदगी में एक निहत्थे शराबी ने एक विक्षिप्त लड़की के साथ बलात्कार किया। शर्म की बात यह थी कि उनमें से एक बेशर्म पत्रकार भी था जो सारी वारदात होते देखता रहा। जब सब कुछ निपट गया तो पुलिस वगैरह को खबर की गयी और बाकी काम किया गया। अखबार में उस पत्रकार ने खबर दी। एक शराबी द्वारा चलती ट्रेन में चार आदमियों की मौजूदगी में एक पागल लड़की के साथ बलात्कार तो अश्लील घटना थी ही उससे ज्यादा अश्लील तो यह बात थी कि वह पत्रकार पूरी घटना को एक चटपटी खबर के रूप में देखता रहा और जब घटना हो चुकी तो उस नपुंसक पत्रकार ने पुलिस वगैरह का सहारा लिया। वह भी अपने स्वार्थ के चलते ताकि खबर को बाद में कोई झूठला न सके। यह अक्षम्य अश्लीलता है जिसके लिए उस पत्रकार को सड़क पर कोड़े मारे जाने चाहिये। हम रोज देखते हैं कि हमारे आस पास आम आदमी किस भाषा में और किस तरह द्विअर्थी संवादों में औरतों के साथ बातें करते हैं और औरतों के प्रति कैसी

भावनाएँ रखते हैं। तो सबकुछ जानने-समझने के बावजूद जब उस चरित्र को आप साहित्य में देखें तो क्या यही उम्मीद करेंगे कि वही पुलिस वाला या दुकानदार या मास्टर या बदतमीज कंडक्टर या शोहदा एक अलग तरह की खालिस या संस्कृतनिष्ठ भाषा बोले जो सिर्फ किताबों में ही मिले, जीवन में नहीं तो आप ही बताइये, ऐसा साहित्य किस श्रेणी में माना जायेगा।

अरसा पहले मैं एक बार गुजरात के सबसे बड़े पुस्तकालय गुजरात विद्यापीठ में एक किताब लेने गया था। किताब थी सिमोन दा बुवा की 'द सेकेंड सेक्स'। यह बता दूं कि गुजरात विद्यापीठ की स्थापना महात्मा गाँधी ने की थी। किताब का नाम सुनते ही वहाँ के सहायक लाइब्रेरियन ने कानों पर हाथ रखते हुए कहा कि इस तरह की किताबें उनके पुस्तकालय में नहीं मिलती। यहां तो चरित्र निर्माण की किताबें ही मिलती हैं।

मैं यहां यह भी बता दूं कि गुजरात विद्यापीठ इस समय कदाचार और भ्रष्टाचार का एक बहुत बड़ा अड्डा बन चुका है। वहां आये दिन कुवांरी माताओं के द्वारा आत्महत्याएं तक सुनी जाती हैं, महिला स्टाफ का, हास्टल वासिनियों का शोषण आम बात है। खैर, मेरा विषय यह नहीं है। मैं बता रहा था कि उस सहायक लाइब्रेरियन ने तब मुझे बताया था कि अरसा पहले लाइब्रेरी में एक खास कमरा हुआ करता था जहां इस तरह की विशेष किताबें ही खास लोगों को जारी की जाती थीं। आपको यह भी बता दूं कि विद्यापीठ के प्रांगण में कोई ऐरा गैरा नत्थू खैरा नहीं घुस सकता जो स्टाफ न हो या वहां का सदस्य न हो। तब मैंने उन सहायक लाइब्रेरियन महोदय का हाथ पकड़ा और उन्हें वहां के टायलेट तक ले गया और उनसे निवेदन किया कि वे एकबार इसके अंदर झांक कर देख लें।

वे शायद पहली बार झांक कर देख रहे थे कि उन दीवारों पर ऐसी एक इंच जगह भी खाली नहीं थी जहां पर अश्लील चित्रकारी न की गयी हो या कुछ अश्लील न लिखा हो। तब उनसे मैंने उनसे कुछ सवाल किये जिनके जवाब निश्चित ही उनके पास नहीं थे। मेरा पहला सवाल यही था कि किसकी यह कारस्तानी है। स्टाफ की, माननीय सदस्यों की जिन्हें आप 'द सेकेंड सेक्स जैसी किताबे न देकर उनका चरित्र निर्माण करते हैं या... या...! वे कोई जवाब दिये बिना चले गये थे और हमेशा मेरे सामने आने से कतराते रहे। इस घटना को लिखने के बाद कुछ भी कहने लिखने की जरूरत नहीं रह जाती।

भाषा बहते पानी की तरह होती है। समाज के साथ-साथ चलती है। अलग से भाषा कोई मायने नहीं रखती। कथा कहानी लिखकर हमें किसी थानेदार को नहीं दिखानी होती है कि वह हमारे लिए भाषा और प्रसंगों के बारे में कायदे बनाये। हम दुनिया भर का नंगापन तो टी. वी. के माध्यम से अपने बेडरूम में आने से नहीं रोक पाये और लेखक के पीछे लट्ठ लेकर पड़े हैं कि तुम्हारी भाषा के लंगोट में कुछ अश्लील-सा दिख रहा है जरा उसे ढक लो।

एक बार मैं, मेरे माता पिता, पत्नी और दोनों बेटे कार में जा रहे थे। छोटे बेटे की उम्र रही होगी उस वक्त पांच बरस। तभी तो उसने कहा कि पापा, मुझे सीट में पचास पैसे मिले हैं। मैंने कहा कि रख लो, कुछ खरीद लेना। वह तपाक से बोला कि पचास पैसे में आजकल आता क्या है। हां, तीन निरोध जरूर मिल जायेंगे।

आप यकीन नहीं कर सकते कि उस वक़्त हम चारों, पांचों के चेहरों पर किस तरह के भाव रहे होंगे। क्या इस तरह के विज्ञापन हर वक़्त दिखाना किसी अश्लीलता से कम है।

तो बंधुवर, साहित्य में अश्लीलता के प्रश्न पर दुबला होने के बजाय हम एक काम करें कि एक सूची बनायें कि हमारे रोजना के जीवन में कहां कहां अश्लीलता है और कितनी है और कबसे से है और क्यूं हैं। और इसे दूर करने के लिए आप क्या-क्या करने का प्रस्ताव रखते हैं।

यकीन मानिये, आपकी सूची पूरी होते ही और हर तरह की अश्लीलता के खिलाफ मुहिम शुरू करने की योजना बनते ही सबसे पहले मैं ही आपके साथ अश्लीलता के खिलाफ आवाज़ उठाऊँगा।

एच१ - 101 रिद्धि गार्डन फिल्म सिटी रोड,
मालाड पूर्व मुंबई - 400097

◆ **नृपेन्द्र नाथ गुप्त** : साहित्य समाज के लिए उतना ही आवश्यक है जितना जीवन के लिए अन्न, जल और वायु। सफल साहित्यकार वह है जो समाज को ऐसी दिशा दे जिससे समाज में नैतिक मूल्यों का विकास हो। आजकल नारी स्वतंत्रता के नाम पर कुछ साहित्यकार ऐसे वीभत्स और

अश्लील साहित्य का सृजन कर रहे हैं जिसका कभी समर्थन नहीं किया जा सकता। नारी का चित्रण केवल उसकी देहयष्टि के वर्णन से किया जा रहा है जबकि उसकी ममता, त्याग और तपस्या की अवहेलना की जा रही है। नारी स्वतंत्रता के नाम पर सस्ते व छिछले साहित्य की रचना की जा रही है। उसकी तीव्र भर्त्सना की जानी चाहिये। हम आँख मूंद कर सआदत हसन, मण्टो तथा पाश्चात्य साहित्यकारों की रचनाओं का अंधानुकरण कर समाज को सही दिशा नहीं दे सकते। आजकल दूरदर्शन व अन्य इलेक्ट्रानिक मीडिया व फिल्मों के माध्यम से जिस अपसंस्कृति का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है उसे बोल्ड साहित्य के नाम पर कदापि प्रश्रय नहीं दिया जा सकता। एक ओर संवदेनशील साहित्यकारों को नारी जागरण को रचनात्मक दिशा प्रदान करने का प्रयास करना चाहिए तो दूसरी ओर अपसंस्कृति का भी विरोध करना चाहिए। अश्लील साहित्य का निर्माण व प्रसार करने वाले साहित्यकार न तो साहित्य का ही कल्याण कर सकते हैं और न समाज का ही। रीति साहित्य और पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र व कुशवाहा कांत आदि जैसे साहित्यकारों तथा उनकी कृतियों को उतनी लोकप्रियता व स्थायित्व नहीं मिला जितना कि तुलसीदास के रामचरित मानस एवं अन्य महाकाव्यों को। कथाकार राजेन्द्र यादव भी आजकल 'हंस' पत्रिका के माध्यम से ऐसी अग्राह्य सामग्री का प्रकाशन कर रहे हैं जो समस्त नारी समाज के लिए अशोभनीय है।

आज हमारी संस्कृति एवं युवा पीढ़ी पाश्चात्य जीवन की चकाचौंध से इतनी आक्रांत हो चुकी है कि उससे भारतीय समाज का कल्याण संभव नहीं। श्रीमद्भागवत एवं गांधी जी के आदर्शों पर चलने वाला यह देश लिप्सा, लोलुपता, कामुकता व अपराध की खाई में डूबता जा रहा है।

आज नारी को भोग-विलास की सामग्री समझने वाले अधिकांश लोग 'मातृवत् परदारेषु' तथा 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता' आदि सनातन उक्तियों को विस्मृत कर चुके हैं। अपनी मिट्टी से उखड़ा पेड़ जिस तरह दूसरी मिट्टी में पुनर्जीवन प्राप्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार पश्चिम की मदमाती राहें अपनाकर हम अपने सही स्वरूप को नहीं पहचान सकते। कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि साहित्य 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की भावना से ओतप्रोत हो, न कि कुरूपता, घृणा, लोलुपता, आदि से। जो हो रहा है, वह तो सबलोग महसूसते हैं, पर उसे महसूस कर उसके निदान की कोशिश ही सच्चा साहित्य है। अंत में हम दुष्यंत कुमार की आवाज़ से आवाज़ मिलाकर कहना चाहेंगे कि...

'सिर्फ हंगामा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि यह सूरत बदलनी चाहिए।'

अध्यक्ष मा. पा. सा. सम्मेलन, बिहार

♦ **कानन बाला सिंह** : साहित्य समाज एवं मानव मन का दर्पण है। सत्साहित्य संवेदना के धरातल पर विश्व बंधुत्व की भावना को चतुर्दिक फैलाकर सुन्दर सुखी समाज की प्रेरणा देता है। आज यर्थाथ और 'बोल्ड लेखन' के नाम पर अश्लील भाषा का प्रयोग मानव मन की विकृति को फैलाकर जुगुप्सा पैदा कर रहा है। बाजारीकरण के युग में संवेदना, संस्कृति और सद्भावना का भी बाजारीकरण कर साहित्य के तथाकथित महारथी अधिक से अधिक प्रचार पाने, फायदा कमाने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं। रातों रात हीरो बनने की हवस ने साहित्य में अश्लीलता का भरपूर प्रयोग करने की होड़ लगा दी है। यौन भावना का खुला प्रर्दशन, अंग-प्रत्यंगों की गहन चीर-फाड़, कामुकता का विस्तृत वर्णन आज के साहित्य का फैशन हो गया है। जो जितनी सच्चाई पूर्वक और वीभत्सता से जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन करेगा, आज के युग में वह उतना ही बड़ा साहित्यकार होगा। मैं तो यह भी कहना चाहूँगी कि यौन संबंधों या अनैतिक संबंधों का उजागर ही अगर 'बोल्डनेस' है तो फिर यौन संबंधों को बेडरूम की दीवारों के भीतर अंजाम देने की क्या जरूरत है। चौक चौराहे कहीं भी यौन संबंधों का खुला प्रर्दशन किया जा सकता है, भले ही आप पति-पत्नी हों या प्रेमी - प्रेमिका।

आज 'बोल्डनेस' के नाम पर विकृत मानसिकता के शिकार कुछ तथाकथित साहित्यकार सस्ती लोकप्रियता के लिए रस ले लेकर स्त्री के अंग-प्रत्यंगों का भद्दे तरीकों से वर्णन करते हैं। उद्दाम वासना के ज्वार में भटकती भाषा का इस्तेमाल कर रहे हैं। कुछ लेखिकाएँ भी इस मामले में कम नहीं। उन्होंने भी इन लेखकों के संग कदम से कदम मिलाते हुए अपनी निजी जिन्दगी का सच्चा दस्तावेज या फिर समाज में उत्पन्न वीभत्स घटनाओं का चटखारे ले-लेकर वर्णन करते हुए अपने को बोल्ड साबित करने का प्रयत्न

किया है।

माना जा सकता है कि समाज में कदम-कदम पर अश्लीलता है और उनसे दूर करने की जरूरत है, तो क्या साहित्य में सच्चाई को 'बोल्डनेस' के साथ प्रस्तुत कर साहित्यकार अपना कर्त्तव्य निभा रहे हैं, समाज को उसका कुरुप चेहरा दिखाकर उसकी कुरूपता को कम कर रहे हैं?

इतिहास गवाह है, जब-जब देश पर मुसीबत आई है, तब-तब तत्कालीन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा शंखनाद किया है, पर अब तो वीभत्स को और ज्यादा वीभत्स बनाना ही साहित्यकारों का धर्म रह गया है। मानना पड़ेगा कि साहित्यकारों को अब कहानियाँ लिखने में इंटरेस्ट नहीं रहा, उन्हें भी पत्रकारों की तरह 'न्यूज' लिखने में ज्यादा मजा आने लगा है।

डी/11, 275, विनय मार्ग, चाणक्यपुरी
नई दिल्ली।

कृष्ण मनु : 'बोल्ड लेखन के नाम पर परोसी जा रही अश्लीलता कहां तक उचित?' - मेरी समझ में ऐसा सवाल किया जाना ही अनुचित है। लेकिन जब सवाल खड़ा किया गया है तो अंदर तक पैठना आवश्यक है। पहले हमें 'बोल्ड लेखन' पर ही सवाल खड़ा करना चाहिए। आखिर क्या है - 'बोल्ड लेखन'? लेखन तो बस लेखन है। 'सत्य लिखना, 'शिव' लिखना, 'सुंदर' लिखना - यही लेखन है। लिखे हुए में समाज प्रतिबिम्बित हो यही लेखन है। समाज का दर्पण बनाने के लिए साहित्य में अश्लीलता के लिए जगह कहां है? हमसे यदि कोई पूछे कि क्या गाली देना उचित है? तो हमें क्या जवाब देना चाहिए?

मेरी समझ में साहित्य में न कहीं 'बोल्ड लेखन' है और न अश्लीलता के लिए उचित-अनुचित का प्रश्न जो 'बोल्ड लेखन' के नाम पर भाषा को नंगा कर रहे हैं, उन्हें साहित्य को समाज का दर्पण नहीं बनाना है। न उन्हें समाज और देश की चिंता है। उनकी चिंता स्वयं चर्चा में बने रहने की है, उनकी चिंता अपने लिए अधिकाधिक पाठक तैयार करने की है ताकि उनका वर्चस्व बना रहे। ऐसे लेखक जानते हैं - नंगे शब्दों का प्रयोग, वीभत्स दृश्यों का चित्रण पाठकों को अधिक आकर्षित करते हैं (यह विडम्बना है!)। यही कारण है कि वे अश्लील भाषा का इस्तेमाल कर रहे हैं और 'बोल्ड लेखन' का शिगूफा छोड़ रहे हैं।

कतिपय लेखक पूर्व में लिखी शृंगार रस प्रधान कृतियों का उदाहरण देकर 'अश्लीलता' की वकालत करते हैं। मुझे तरस आता है ऐसे लेखकों पर। दरअसल 'शृंगार' को अश्लीलता के साथ जोड़ना जड़ता की निशानी है। 'शृंगार' जहाँ आनंदानुभूति, प्यार, मनुहार का संचरण करता है, वहीं अश्लीलता वासना, पिपासा, जुगुप्सा पैदा करती है। 'शृंगार' में नंगे शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता लेकिन आज तथा कथित बोल्ड लेखन में नंगे शब्दों का जिस तरह से खुलकर प्रयोग किया जाता है उससे केवल विचार गंदे हो सकते हैं, वीभत्स सेक्स पैदा हो सकता है, जुगुप्सा पनप सकती है, समाज की भलाई नहीं हो सकती, फिर ऐसे लेखन का क्या प्रयोजन..??

संपादक 'स्वातिपथ'
बी III/35, मुनीडीह, धनवाद- 828129

साहित्य की दुनिया में दो नयी पुस्तकें

रिर्जव सिट

(कहानी संग्रह)

लेखक : डा० रामकुमार तिवारी

प्रकाशक

लक्ष्मी प्रकाशन, जी - 30, गली नं० - 4
गंगाविहार, दिल्ली - 110094

मूल्य : 200 रुपये

मिस्टर अनफिट

(व्यंग्य उपन्यास)

लेखक : अवधेश शर्मा

प्रकाशक

रचनाकार प्रकाशन, गुरूद्वारा मार्ग
पूर्णिया - 854 301

मूल्य : 120/ साजिल्द
60/ अजिल्द

रमा सिंह को मिला २२ वां राधाकृष्ण पुरस्कार

राँची निवासी रमा सिंह को उनके साहित्य रचना के लिए राधाकृष्ण पुरस्कार से सम्मानित किया गया। प्रसिद्ध साहित्यकार व समीक्षक डॉ गोपाल राय ने पुरस्कार के तहत उन्हें शॉल, प्रशस्तिपत्र व ग्यारह हजार रुपये प्रदान किये। कार्यक्रम की शुरूआत रांची एक्सप्रेस के प्रबंध निदेशक सीताराम मारू द्वारा स्व. राधाकृष्ण की तस्वीर पर माल्यार्पण से हुई। रांची एक्सप्रेस के प्रधान संपादक बलबीर दत्त ने कहा कि किसी भी अखबार या पत्रिका का यह दायित्व होना चाहिए कि वह साहित्य और लेखन के क्षेत्र में युवा प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करें। उन्होंने कहा कि हम हिन्दी भाषी लोगों को ही हिन्दी की चिंता करनी चाहिए।

इस अवसर पर डा० श्रवण कुमार गोस्वामी ने कहा कि हिन्दी के लेखक आज जितने भाग्यशाली हैं, उतने कभी नहीं रहें। क्योंकि आजकल पुरस्कारों की बौछार हो रही है और कुछ न कुछ सही इससे लेखकों के माली हालत में सुधार अवश्य होता है।

इस समारोह में मुख्य अतिथि डा० गोपाल राय ने कहा कि रांची एक्सप्रेस द्वारा साहित्यकरों के नाम पर पुरस्कृत करने की योजना सराहनीय है। स्व. राधाकृष्ण की गुमनामी की चर्चा करते हुए वे बोले कि उनकी रचनाएँ सहज-सुलभ नहीं है। उन्होंने कहा कि उपन्यास लेखन के नाम पर आजकल कूड़ा भी लिखा जा रहा है। लिखने से ज्यादा कठिन समीक्षा लिखना है, क्योंकि इसमें प्रामाणिक जानकारी देनी होती है। गोपाल राय ने सदी के अंत में महिला लेखकों की बढ़ती संख्या पर खुशी जाहिर की।

२२ वां राधाकृष्ण सम्मान से सम्मानित रमा सिंह के अब तक चार उपन्यास, चार कहानी संग्रह और कई कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी है। उपन्यास 'गुलाबछड़ी' का 'धर्मयुग' में धारावाहिक प्रकाशन हुआ है।

कार्यक्रम का संचालन अशोक प्रियदर्शी ने किया। इस अवसर पर पत्रकार हरिवंश, उषा सक्सेना, विद्या भूषण, डा० रामकुमार तिवारी आदि कई गणमान्य लोग उपस्थित थे।

लेखन को महिला-पुरुष के बीच नहीं जकड़ा सकता

धनबाद में १५ दिसम्बर को साहित्यकार संसद के तत्वावधान में 'महिला लेखन की चुनौतियाँ' विषयक गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता डा० कनकलता, संचालन डा० मृत्युजंय उपाध्याय, धन्यवाद ज्ञापन राजपाल यादव अलबेला ने किया। डा० कनकलता ने कहा कि समाज के कुछ तबकों में महिलाओं का अनुभव पुरुषों की अपेक्षा सीमित है। फिर भी महिलाएं जिस ढ़ंग से संवेदनाओं का उकेरती हैं, वैसा प्रायः पुरुषों द्वारा नहीं हो पाता। उन्होंने मैत्रेयी पुष्पा, मृणाल पांडे, मन्नू भंडारी की लेखनी को महिलाओं के संदर्भ में प्रासंगिक बताया। डा० शशिप्रभा ने कहा कि भावनाओं की अभिव्यक्ति ही लेखन एवं कविता है। इसे महिला एवं पुरूषों के बीच नहीं जकड़ा जा सकता। साहित्यकार नारायण सिंह ने कहा, यह सही है कि नारी ही नारी की सही तस्वीर पेश कर सकती है।

इस अवसर पर प्रो० बी. बी. शर्मा, राजेश्वर वर्मा ललित, डा० शिवेश, आनंद कुमार शर्मा 'चंचल' रेणू खन्ना, संगीता उपाध्याय, रणधीर केशरी, डा० बिमला उपाध्याय, रेजन वर्मा, वाणी भूषण आदि ने अपने-अपने विचार रखें।

मसि कागद का पंचम वार्षिकोत्सव

प्रयास ट्रस्ट रोहतक द्वारा प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'मसि-कागद' का पंचम वार्षिक समारोह १७ नवम्बर २००२ को मैना टूरिज्म कॉम्पलैक्स के सभागार में आयोजित किया गया। समारोह की अध्यक्षता हरियाणा साहित्यिक अकादमी के अध्यक्ष डॉ० चन्द्र त्रिखा ने किया तथा विशिष्ट अतिथि सूर पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार डॉ० हरिश चन्द्र वर्मा थे।

कार्यक्रम के आंरभ में हिसार से पधारे दैनिक ट्रिब्यून के वरिष्ठ पत्रकार कमलेश भारतीय ने लघु पत्रिकाओं का साहित्य में महत्त्व व योगदान पर

आलेख पढ़ा।

डॉ० सुभाष रस्तोगी चंडीगढ़ ने लघु पत्रिकाओं का इतिहास उनकी समस्याएँ व समाधान पर अपना विद्वतापूर्ण राय दी।

नगर के वरिष्ठ चिकित्सक एवं हरियाणा के वरिष्ठ साहित्यकार 'मसि-कागद' के संपादक डॉ० श्याम सखा श्याम ने 'मसि-कागद' का अबतक के सफर का आलेख पढ़ा।

डॉ० चन्द्र त्रिखा ने 'मसि-कागद' के पंचम वर्ष के प्रथम अंक का लोकार्पण किया। उन्होंने कहा कि जब भी साहित्य में शून्य उत्पन्न हो जाता है तो समाज में आपराधिक तत्त्व बढ़ जाते हैं।

इसके अलावे इस समारोह में अर्चना ठाकुर, सत्यपाल सत्यम मेरठ, माधव कौशिक चंडीगढ़ एवं गाजियाबाद से पधारे डॉ० कुँवर बेचैन ने अपनी कविताओं द्वारा श्रोताओं का मनोरंजन किया।

इस अवसर पर 'मसि-कागद' के अबतक प्रकाशित सभी अंकों की प्रदर्शनी की गई।

हरे प्रकाश उपाध्याय को २३ वां 'अवसर साहित्य सम्मान'

✍ बीना 'सिद्धेश'

साहित्यिक संस्था भारतीय युवा साहित्यकार परिषद के २३ वें वार्षिकोत्सव का उद्घाटन करते हुए साहित्यकार श्री जियालाल आर्य ने कहा कि बिहार की युवा प्रतिभाओं को सार्थक मंच देकर उसे जितना प्रोत्साहन भारतीय युवा साहित्यकार परिषद् ने किया है, वह एक आदर्श उदाहरण है। श्री आर्य ने 'साहित्यकार और पुरस्कार' विषयक संगोष्ठी को संबोधित करते हुए कहा कि किसी भी स्तर का पुरस्कार अब विश्वसनीय नहीं रह गया है। भारतीय व्यापार प्रबंधन संस्थान के सभागार में लघु पत्रिका प्रदर्शनी तथा सिद्धेश्वर द्वारा रेखांकित कविता- लघुकथा पोस्टर प्रदर्शनी भी लगाई गई। देश भर की लगभग दो सौ पत्रिकाओं में कथाक्रम, समर लोक, साहित्य अमृत, वागर्थ, गगनांचल, कथा सागर, वर्तमान संदर्भ, प्रिया विनोदनी, तद्भव, कथादेश, कथाबिंब, मसि-कागद, प्रयास, कहानीकार, कंचनलता, शुभतारिका, दीपज्योति, नयी धारा, अवसर, अविरल मंथन, शब्द कारखाना, पनघट, वर्तमान साहित्य, हरिगंधा आदि चर्चा में रही।

इस समारोह में '२३ वां' अवसर साहित्य सम्मान' नवोदित युवा कवि श्री हरे प्रकाश उपाध्याय को प्रदान किया गया। सम्मानित करते हुए कवि-कथाकार श्री परेश सिंहा ने कहा कि भूमंडलीकरण और विश्व बाजार के कारण साहित्यकारों के सामने जितनी जटिल चुनौतियाँ हैं, उसका सामना करते हुए उन्हें लिखना चाहिए।

समारोह के विशिष्ट अतिथि श्री अनिल सुलभ ने कहा कि साहित्यकारों को पुरस्कार की चिंता न कर, साहित्य की साधना करनी चाहिए।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए डॉ० राधाकृष्ण सिंह ने कहा कि सरकारी-गैर सरकारी स्तर पर इन दिनों जो पुरस्कार दिये जा रहे हैं, उनकी अराजकता को छोड़ दिया जाये तो सम्मानित साहित्यकारों को इतना लाभ तो मिलता ही है कि नये सिरे से उनके साहित्य का मूल्यांकन होता है।

इस अवसर पर अपने स्वागत भाषण में संस्था के संस्थापक-अध्यक्ष श्री सिद्धेश्वर ने कहा कि बिहार में प्रतिभाओं की कमी नहीं है, आवश्यकता है उन्हें निर्भीक और स्वतंत्र मंच प्रदान करने की। प्रथम सत्र में 'साहित्यकार और पुरस्कार' विषयक संगोष्ठी के मुख्य वक्ता डॉ० शिवनारायण, अध्यक्ष डॉ० सच्चिदानंद सिंह 'साथी', संचालक युवा कवि श्री अरुण कुमार ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये।

समारोह के दूसरे सत्र में एक दर्जन लघु कथाकारों ने समकालीन लघुकथाओं का पाठ किया। तीसरे सत्र में कवि गोष्ठी का आयोजन किया गया। कवि गोष्ठी का सफल संचालन कवि-कथाकार श्री शिवदयाल ने किया। तीन सत्रों में संपन्न इस भव्य साहित्यिक समारोह के अंत में धन्यवाद ज्ञापन 'वातायन' के प्रकाशक श्री राजेश शुक्ल ने किया।

श्री कृष्ण तिवारी यू० पी० रत्न

काशी के नवगीतकार श्री कृष्ण तिवारी को उनके नवप्रकाशित काव्य संकलन 'सन्नाटे का गीत' के लिए आल इंडिया कान्फ्रैंस आफ इंटलेक्युअल्स के यू० पी० चैप्टर की ओर से पूर्व निर्वाचन आयुक्त जी० वी० जी० कृष्णमूर्ति की अध्यक्षता में लखनऊ में आयोजित समारोह में राज्यपाल आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने समानित किया। सम्मानस्वरूप मानपत्र राजस्थानी साफा और २१ हजार रुपये नगद प्रदान किये गये।

विगत को नमन स्वागत आगत वर्ष

मीनाक्षी भगत

कहते हैं प्रकृति का रथ कभी नहीं रूकता, चाहे उमस भरी गर्मी हो या बादलों के गर्जन, तर्जन के साथ घनघोर बारिस, या मदमाया, अलसाया सा बसंत, इन सबों को पार करता हुआ प्रकृति रूपी रथ चलता ही रहता है। जिस तरह गहन अंधकार के बाद हंसती-मुस्कराती उषा की लालिमा चारों ओर अबीर सा बिखेर देती है, उसी तरह एक उतावले भरे इंतिजार के साथ नव वर्ष का अगामन जीवन में नयी स्फूर्ती और उल्लास का संचार कर देता है और मन कितनी ही आशाओं और आकांक्षाओं के पंख लगाए कल्पना लोक में विचरने लगता है, लेकिन एक झटके में जब तन्द्रा टूटती है तो सामने होती है एक वीभत्स एवं डरावनी दुनिया, जहां कदम-कदम पर दिल दहलाने वाली आवाजें, बालात्कार, घृणा, हत्या संप्रदायिकता सर्वत्र नंगा नृत्य दिखा रही होती है।

खैर, अभी हम इस भयावह सच्चाई से कुछ पलों के लिए मुख मोड़ कर एक नये संकल्प के साथ नववर्ष का स्वागत करें और पुराने बूढ़े वर्ष को अलविदा कहते हुए उसके संग बिताये पलों को यादों के रूप में संयोजित कर लें। पर यादें भी कभी अनुशासित नहीं हो पाती और गांव की अल्हड़ बाला की तरह इधर-उधर डोलती हुई हमारे मानस पटल को उद्धेलित करने लगती हैं। उन्हीं यादों की चंद झलकियाँ आपके सामने है : -

28 अगस्त को प्रधानमंत्री ने दिल्ली से ही ऑन लाइन सिस्टम के जरिये कोइनझारी गांव में 'झारखंड ग्राम शिक्षा अभियान' का उद्घाटन किया। उन्होंने गांव के बच्चों से बात-चीत की। प्रधानमंत्री ने कहा कि साक्षरता अभियान का तेजी से विस्तार करना चाहिये। पढ़ाई के लिए नये बच्चों को प्रेरित करना होगा। हम चाहते हैं कि ऐसा हिन्दुस्तान और झारखंड बने, जहां हर बच्चा साक्षर हो।

2 नवम्बर को झारखंड के राज्यपाल एम रामा जोयिस द्वारा लिखित पुस्तक 'धर्म विश्व सदाचार संहिता' का लोकार्पण भारत के उपप्रधानमंत्री लाल कृष्ण आडवानी द्वारा किया गया।

उपहार पाकर खुश होना मानव जीवन की सरल प्रक्रिया है। दो वर्ष पूर्व जब नये झारखंड राज्य के गठन का उपहार हमें मिला तो एक नयी उम्मीद, एक नये अरमान की तरह कितने ही ख्वाब अंगड़ाई लेने लगे। फिर देखते-देखते एक साल बीता और फिर आया झारखंड का दूसरा स्थापना दिवस। ढोल-मांदर की आवाजों पर परंपरागत गीतों और नृत्य की थिरकनों से सारा शहर झूम उठा। चार से पांच दिनों तक चलने वाले इस समारोह में तरह-तरह के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक कायक्रर्म हुए। फिर एक लंबे किन्तु धैर्य पूर्वक इंतिजार के बाद शुरू हुआ कवि सम्मेलन, जिसका उद्घाटन करते हुए उद्योगमंत्री पशुपति नाथ मिश्र ने देश भर से आये कवियों का स्वागत किया। राजस्थान की धरती से जाने-माने हास्य कवि सुरेन्द्र दुबे, बेतुल से वरिष्ट कवि नीरजपुरी, सहारनपुर से गीतों के राजकुमार राजेन्द्र राजन, क्रांति, शोर, प्रेमरोग जैसी फिल्मों के गीतकार सतोषानंद आदि की उपस्थिति ने इस अवसर को विशिष्ट बना दिया। बज की धरती से आयी सरिता शर्मा ने प्रेम-गीत प्रस्तुत किये।

14 दिसम्बर को पुरूलिया रोड स्थित जेवियर समाज सेवा संस्थान के महाप्रागंन में 'आर्थर्स गिल्ड ऑफ इंडिया' का २८ वां राष्ट्रीय सम्मेलन संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि झारखंड विधानसभा अध्यक्ष इंदर सिंह नामधारी का यह कथन - नेता सिर्फ वहीं पूजे जाते हैं, जहां उनकी सत्ता होती है पर लेखक और विद्वान सर्वत्र पूजनीय हैं, सुनकर गर्व की अनुभूति हुई। उन्होंने कहा, लेखक तभी तक पूजनीय होते हैं जब तक वे ज्ञान की गंगा बहाते रहे। यदि वे अपनी लेखनी को तिजारत की दृष्टि से देखेंगे तो समाज का कल्याण कभी नहीं होगा। 'इस अवसर पर 'आर्थर्स गिल्ड ऑफ इंडिया' के महामंत्री राजेन्द्र अवस्थी के कर कमलों द्वारा 'टेंडर हार्ट' स्कूल की प्रधानाध्यापिका मंजू गार्गी द्वारा लिखित पुस्तक 'टेबल प्ले' का विमोचन हुआ। डा० अवस्थी ने संस्था की कार्य प्रणालियों की विस्तृत जानकारी दी और कहा, 'आर्थर्स गिल्ड' का एक मुख्य उद्देश्य लेखकों को सुरक्षा प्रदान करना है।

इस अधिवेशन के दूसरे सत्र में 'पुस्तकें कभी व्यर्थ नहीं होती' विषय पर परिचर्चा हुई, जिससे बहुत ही अच्छे विचार उभर कर सामने आए। पूर्व कुलपति ए० के० धान ने कहा कि लेखक की उपलब्धियाँ

किसी वैज्ञानिक से ज्यादा होती है। डा० मोती लाल जोतवानी ने कहा, 'लिखना लेखक की अभिव्यक्ति का आधार है, उसकी क्षमता है और लेखकीय ईमानदारी से ही रचना कालजेयी होती है।

केरल के प्रो० सोमनाथन नायर के लिखे नाटक 'ईहामृग' का प्रकाशनोद्घाटन करते हुए पत्रकार राजेन्द्र अवस्थी ने कहा कि लेखक-प्रकाशक संबंध बहुत महत्वपूर्ण है। कई प्रकाशक लेखकों का शोषण करते हैं, यह तभी बंद होगा जब लेखक अपने अधिकारों के प्रति सचेत होगा।

इनके अलावा जनक राजा जैन, बी० के० चांद, एम० पी० कौशिक, अभिषेक सिंह, शेखर सिंह, नवनीत सिंह, मनीष नाथ सहित कई लेखकों व कवियों की उपस्थिति ने इस अवसर को यादगार बना दिया।

10 दिसंबर से 23 दिसम्बर तक लोयला मैदान में जागृति क्रिसमस मेला आयोजित किया गया। आदिवासी कलाओं की विरासत समेटे इस मेले में तीर धनुष, मांदर, बंबू आर्ट, वूडेन आर्ट, स्कल्पचर मूर्तियाँ, डलिया, जूट के थैले समेत कई वस्तुओं ने झारखंड के ग्रामीण संस्कृति की झलक पेश की।

14 नवंबर विशुनपुर जैसे सुदूर देहात में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम की छटा देखकर राज्यपाल एम० रामा जोयिस ने कहा कि इन बच्चों की प्रतिभा देखकर यह कह सकता हूँ कि भारतीय संस्कृति कभी नहीं मरेगी। झारखंड अमर शहीद बिरसा मुंडा का जन्म स्थान है और यह अत्यन्त गौरवशाली बात है कि बिरसा मुंडा झारखंड के सांस्कृतिक एवं पुर्नजागरण के प्रणेता थे।

15 दिसम्बर को ग्राम्य अभियंत्रण संगठन मंत्री मधु कोड़ा ने डा० आदित्य सिन्हा द्वारा रचित पुस्तक 'हो भाषा और साहित्य का इतिहास' पुस्तक का विमोचन किया। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि साहित्य और रचनाओं से सामाजिक स्थितियों में बदलाव लाया जा सकता है। बुद्धिजीवी वही है जो अपनी लेखनी से समाज को नयी दिशा दे और हर व्यक्ति का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह लिखने की आदत डालें। श्री कोड़ा ने आगे कहा कि श्री सिन्हा ने सिंहभूम आदिवासी समाज की भाषा को लिपीबद्ध कर 'हो' समाज की खाली अंगुलियाँ रत्नों से जड़ दी है।

11 दिसम्बर को मिखाइल नेत्रहीन विद्यालय, राँची की अलमा भेंगरा व दुलार तिग्गा ने जवाहर लाल स्टेडियम, नई दिल्ली में गत दिनों संपन्न १३ वें राष्ट्रीय नेत्रहीन खेल-कूद प्रतियोगिता में एक स्वर्ण, दो रजत, एक कांस्य पदक जीतकर झारखंड राज्य को गौरवान्वित किया।

13 सितम्बर को श्री दिगम्बर जैन मंदिर में जैन मुनी प्रज्ञा सागर ने दशलक्षण पर्व के अवसर पर कहा कि जीवन में सरलता लानी जरूरी है, क्योंकि साधु बनना सरल है, लेकिन सरल बनना कठिन। अधिक विन्नमता कभी-कभी चापलुसी प्रतीत होती है और चापलुस विश्वासघाती होता है। विन्नमता बाहर से देखी जा सकती है, सरलता नहीं। मनुष्य जब भी परमात्मा के निकट जाएगा, सरल बनकर ही जायेगा।

ज्ञान गंगा के तत्वाधान में आयोजित पुस्तक मेले ने वर्ष के अंत में झारखंडवासियों को तरोताजा कर दिया।

अंत में यादों के पन्नों को आगे खोलती रहूँ तो जाने कितने युग बीत जायें। फिलवक़्त तो बस इतना ही....

विगत को नमन
स्वागत आगत वर्ष
चहुँ ओर बिखेरे
आशा, उमंग, प्रेम सहर्ष।

छपते छपते

राँची विवि पत्रकारिता व जनसंचार विभाग की निदेशक डॉ. ऋता शुक्ल को साहित्य अकादमी नयी दिल्ली का सदस्य मनोनीत किया गया है । डॉ. शुक्ल को यह सदस्यता पाँच वर्षों के लिए मिली है । इनका कार्यकाल वर्ष २००३ से २००८ तक रहेगा ।

डॉ. ऋता शुक्ल को 'वर्तमान संदर्भ' परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

पुस्तक समीक्षा

बापघर न आपघर

विद्यासागर नौटियाल

उपन्यास :	आपघर या बापघर
लेखिका :	महावीर रवांल्टा
प्रकाशक :	झारीसन प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली - 110002
मूल्य :	एक सौ पचास रुपये मात्र

गढ़वाली समाज में आम बोल-चाल के एक जुमले 'आपघर या बापघर' को प्रयुक्त कर लिखा गया महावीर रवांल्टा का उपन्यास। शीर्षक बताता है कि यह किसी ऐसी स्त्री की कथा होगी जो ससुराल और मायके के बीच अपने रहने-जीने लायक सही स्थान की तलाश/ चयन की कोशिश में लगी है। उपन्यास को पूरा कर लेने के बाद पाठक के मन में एक टीस भर रह जाती है। बापघर में अपनी भोली-भाली माँ के जीवन की दुश्वारियों की चाची के द्वारा मिली पूर्वकथा की जानकारी राजुली को परेशान करती है। माँ ने जिन्दगी भर उस शराबी के साथ कष्ट भोगे थे। पर उससे भी ज्यादा बुरी बात यह है कि उसकी माँ को, लोगों की नजरों में इलाज के बहाने, दिल्ली की जी० बी० रोड पर पहुँचाने वाले उसके बाप को सिर्फ उतने से संतोष नहीं होता। वह निठल्ला अपनी टीचर बेटी की कमाई तो खाता ही है, विवाह के नाम पर उसके ससुरालियों से, यानी पितृविहीन अपने भावी दामाद से दस हजार की रकम भी ऐंठ लेता है। लेकिन फिर भी उसे संतोष नहीं मिलता तो एक अजीब षड्यंत्र रचता है। उसकी उस एकमात्र विवाहिता बेटी के चरित्र पर उसके पियक्कड़ यारों की टोली उसके पति जमनू के सामने चारित्रिक लांक्षण लगाकर ऐसी स्थिति पैदा कर देता है कि उसका दिमाग चल-विचल हो जाता है। जमनू को अपनी पत्नी की सूरत तक से नफरत हो जाती है और वह राजुली को घर से भगा देता है। बेटे के बचपन से उसके सुखद भविष्य की आस के सहारे जीवन-संग्राम से जूझती उसकी बेवा मां सदमें के कारण मर जाती है। घर के बाहर अखरोट के पेड़ के नीचे अपने आप में बड़बड़ा रहे जमनू को किसी ने मां के मर जाने की खबर सुनाई तो वह चिल्लाया, 'मर गई, मर गई' और फिर बंदरों की तरह उछल-कूद मचाने लगा। भतीजों ने ताई की अर्थी को कंधा दिया। अपने आजीवन-निठल्ले, पियक्कड़ बाप की इस मंशा को भांप कर कि वह किसी और व्यक्ति से फिर से उसका सौदा करने की फिराक में है तो राजुली अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि उसे अपने बाप से भी अलग होकर रहना शुरू कर देना चाहिए। वह टीचर है और अपने बाप को भी पालती आयी है। वह हिम्मत करके अपने स्कूल में रहना शुरू कर देती है। वहीं उसके दिमाग में यह बात आती है कि उसे बाप घर नहीं, आपघर लौटना होगा। बाद में वह अपने रोगी पति को अपने खर्चे पर शहर ले गई और वहां उसका इलाज भी करवाया। उस इलाज का प्रभाव स्थायी नहीं रह पाया और करीब छः महीनों के अंतराल के बाद एक दिन जब वह विद्यालय से घर लौटी तो जमनू फिर उल जलूल बकने लगा था। अंत में वह अखरोट के उसी पेड़ के तले अपना आसरा ढूढ़ने लगता है।

महावीर रवांल्टा को पढ़ते हुए पाठकों को ऐसा लगता है कि वह पर्वतीय गांव में विचरण कर रहा है। उपन्यास में स्थानीय शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग किया गया है। पर वे अखरते नहीं है, अनबुझे भी नहीं रहते। साथ ही अपने इलाके के रीति-रिवाजों का भी लेखक ने बार-बार जिक्र किया है और उससे पाठक अपने को उस धरती के और करीब महसूस करने लगता है। इसमें कोई भी अनहोनी घटना नहीं घटती। जीवन में जैसा कुछ होता है, वैसा ही उपन्यास में आ रहा है। और कोई भी ऐसा चरित्र सामने नहीं आता जो सामान्य जन से अलग हो। सीधे-सादे लोग हैं जिनकी जीवन गाथाएं, सामान्य गाथाएं उपन्यासकार इस अंदाज में पेश करता है कि हमें किसी हीरो की तलाश करने की जरूरत नहीं पड़ती कि बोलो, इस उपन्यास का मुख्य पात्र कौन है। मुख्य पात्र वे आम लोग हैं जो बुरे लोगों का मुकाबला करते हुए जी रहे हैं।

– डी- 8, नेहरू कॉलोनी, धर्मपुर,
देहरादून- 248 001

आपके पत्र

पाठकों का अतुलनीय सहयोग

वर्तमान संदर्भ के इस अंक को देखने के बाद यह कहना उचित है कि इसकी आयु में श्री वृद्धि यानि अंक-दर-अंक निकलते रहेंगे, ऐसा विश्वास न करने का कोई कारण नहीं।

यूं हर महत्त्वपूर्ण पत्रिका अपने होने में, पत्रिका परंपरा के भीतर एक घटना होती है। लेकिन एक घटना के रूप में उसका महत्त्व इस तरह होता है कि वह अन्य वैसी ही घटनाओं की पूर्व-शृंखला में एक और घटना की तरह जुड़ जाती है। लेकिन कुछ पत्रिकाएँ ऐसी भी होती हैं जो भले ही निर्णायक मोड़ लाने वाली कुछ घटनाओं की तरह निर्णायक महत्त्व की न हो, पर जो निरंतर पत्र-पत्रिका-आख्यान में अपनी उपस्थिति इस कदर दर्ज करती हैं कि पूरा आख्यान सुरभित हो जाता है। उदाहरण के लिए 'राम की शक्तिपूजा' का महत्त्व सिर्फ यह नहीं है कि उसमें शक्ति की मौलिक अवधारणा घटित होती है, बल्कि ज्यादा बड़ा महत्त्व इस बात में है कि यह कविता स्वयं शक्ति की एक मौलिक कल्पना के रूप में घटित होती है।

पत्रिका-आख्यान में कमोबेश यही स्थिति 'वर्तमान संदर्भ' की है। इसका नियमित प्रकाशन, अंक-दर-अंक, एक सामान्य घटना भले प्रतीत हो, पर इसने अंक-दर-अंक, अग्निकुंड में खिले गुलाब की तरह, अपनी संघर्षशील उपस्थिति से साहित्य-संसार को सुषमित-सुरभित किया है, यह कम बड़ी बात नहीं है। आज जब पाठक और पाठकीयता पर सवाल उठाये जा रहे हैं, बहस-मुबाहसे हो रहे हैं, तब किसी पत्रिका का एक विशाल पाठक वर्ग से जुड़ा रहना, लघु-पत्रिकाओं के लिए विषम परिस्थितियों को जीना तथा अपना प्रकाशन-क्रम जारी रखते हुए अपनी संवाद-यात्रा का आगे, और आगे यात्राक्रम बनाए रखना सचमुच में एक अद्वितीय घटना कही जाएगी।

आश्चर्य नहीं किया जाना चाहिए कि इस अन्यतम उपलब्धि के पीछे संपादक एवं पत्रिका परिवार के सदस्यों की निष्ठा, प्रत्युत्पन्नमति तथा साहित्य से सम्यक सरोकार तो हैं ही, मुश्किल से मिलने वाले सही पाठकों के अतुलनीय सहयोग भी हैं, जिनके बल पर पत्रिका को एक लंबी उम्र दे पाना संभव होता है। संपादक को कहीं से यह मुगालता नहीं होना चाहिए कि पत्रिका के पाठक पैंट में हाथ डाले कहीं घूम रहे हैं, या बीहड़ में भटक रहे हैं और साहित्य का कोई समाधान सुझाने में अक्षम हैं और वर्त्तमान राजनैतिक व्यवस्था में सुधी भविष्य की कोई गुंजाइश नहीं है।

इस अंक की कहानियों में कनकलता, नीलम कुलश्रेष्ठ तथा निर्मला पुतुल की कहानियां अच्छी लगी। कनक लता का कथा-शिल्प और कथा-विधान विस्मयकारी है। 'संदर्भ -सुधा' तथा 'अद्यप्रभति' ने झकझोरा।

रमेश नीलकमल, जमालपुर - 811 244

सार्थक सवाल...

अपनी पत्रिका के माध्यम से आपने 'साहित्य में बोल्ड लेखन' पर परिचर्चा का आयोजन कर एक सार्थक सवाल की ओर पाठकों का ही नहीं, रचनाकारों का भी ध्यान खींचा है। इसलिए कथाकार कनकलता को बधाई।

कनकलता ने जिस मकसद से इस सवाल को उठाया है, उसके तह में जाने की जरूरत है। परिचर्चा में शामिल पाठक लेखकों ने इसे इतर भटकाने की कोशिश की है। किसी ने श्लील-अश्लील तो किसी ने सुंदर-असुंदर और परंपरा और कामशास्त्र की सार्थकता में बहस कों गुमनाम करने की कोशिश भी की है - जो इस बहस से मतलब भी नहीं रखता है। कनकलता कहती हैं, 'वह बेड़ी स्त्री की देह है, जिससे उसे बांधा गया है। देह के स्तर पर स्वतंत्र होने की इस धारणा से सहमत होकर नारी स्वतंत्रता के सेनानियों ने देह को उघाड़कर स्वतंत्रता का परचम लहराना शुरू कर दिया है। ....सेक्स का खुला प्रदर्शन, घिनौनी गालियों की बौछार, बस इसी चौखटे में फिट होनेवाले साहित्य की आज प्रशस्ति गायी जा रही है।'' कनकलता का मूल संकेत इससे स्पष्ट हो जाता है।

दरअसल 'बोल्डनेस' जैसी बातें किन बुनियादों से उपजीं? 'बड़े लेखकों' के भीतर इन दिनों चटखारे लेने और बाजार-संस्कृति में मजे लेने के ख्याल से ही आनेवाली पीढ़ी को मुख्यधारा के सवालों - स्त्री-पुरुष के अलग-अलग विमर्शों से परे संपूर्ण मनुष्य और उसके संघर्षों से 'डेविएट' करने की साजिश रची गयी। स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श जैसे सवाल उछाले गये। मैत्रेयी पुष्पा, जया जादवानी, अलका सरावगी जैसी स्त्री रचनाकारों के भीतर से दैहिक उन्मुक्तता और 'बोल्डनेस' की तलाश 'हंस' जैसी पत्रिकाओं के

माध्यम से रेखांकित की जाने लगी। 'हंस' की कुछ ऐसी पिछलग्गू पत्रिकाएँ भी रहीं, जैसे 'कथादेश' और कुछ हद तक 'वर्तमान साहित्य' भी। परन्तु इसका सीधा श्रेय राजेन्द्र यादव और उनकी पत्रिका 'हंस' को जाता है। इन्होंने अपने आगे-पीछे नये रचनाकारों की नयी जमात खड़ी कर ली, जो बाजार और मीडिया के प्रति अतिशय ललक के कारण साहित्य में आए हैं, जिनके पास अपना कोई 'विजन' नहीं है। साहित्य इनका सामाजिक - राजनैतिक सरोकार नहीं, सिर्फ ग्लैमर है। विचार और इतिहास के अंत की साम्राज्यवादी घोषणाओं से खुशफहम रचनाकारों के लिए बाजारवाद की तरह साहित्य-संस्कृति भी उन्मुक्त बाजार जैसा दिखा है।

इसी 'बोल्डनेस' के तहत अभी निर्देशक सोमनाथ सेन की एक ताजा फिल्म आयी है - 'लीला'। इस फिल्म में डिंपल कपाड़िया एक विद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर हैं और फिल्म का नायक अमोल म्हात्रे इनका छात्र है। नायक छात्र इनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और अपने सहपाठियों के बीच ऐलान करता है कि एक दिन वह अपनी इस प्रोफेसर को अपनी हमबिस्तर बनाएगा। यहाँ तक कि नायक छात्र को नायिका प्रोफेसर के साथ हमबिस्तर होने के पूर्व बाथरूम में पाकेट से कंडोम निकालते हुए भी दिखलाया गया है। हंसल मेहता की फिल्म 'ये क्या हो रहा है' तो 'लीला' से भी एक कदम आगे हैं, जब फिल्म में चार लड़के अपना ब्रह्मचर्य तोड़ने के लिए तरकीब सोचते हैं और उसी तरकीब के तहत विडियो पर ब्लू फिल्म के मजे लेते हैं। साहित्य में भी वालीबुड की तर्ज पर इसी सेक्सी विषय को 'बोल्डनेस' नाम दिया जा रहा है; जैसे साहित्य में स्त्री पुरुष के बीच सेक्सी नग्नता, समलैंगिकता, लेसबियन जैसे विषय ही रह गये हों। ऐसों को मीडिया और बड़े अखबार खुलकर साथ देते हैं। टी. वी. चैनलों के धारावाहिकों, टेलीफिल्मों की ओर पैसों के लिए इनका ललचना स्वभाविक भी है, फिर तो इनकी कलमें बाजारू उत्पादों के सिवा और क्या दे सकती है? अभी 'आउट लुक' में राजेन्द्र यादव का दिलचस्प वक्तव्य पढ़ा। इसे पढ़कर लगा कि निजी फूहड़ता अपनी स्त्रियों के साथ को सार्वजनिक करने का अलग किस्म का 'रतिसुख' है। ऐसी चीजें क्यों न हो, जब ऐसे साहित्य के लिए सुधीश पचौड़ी जैसे 'साहित्यनामा' नाम से स्तंभ लेखक भी हो।

साहित्य-संस्कृति को साम्राज्यवादी 'खुलावाद' से कैसे बचाया जाए - यह सवाल हमें बेचैन और गुस्सैल किये जा रहा है। छोटी पत्रिकाओं, इसके संपादकों और सामाजिक सरोकारों के तमाम रचनाकारों को मिलजुलकर साहित्य में उनकी केन्द्रीयता पर लगातार प्रहार करने की जरूरत है। तभी समाज, विचार और इतिहास के बल पर हम मानवीय अस्मिता और उसकी संघर्षशील चेतना को बचाए रख सकेंगे। समय ने हमारे सामने जो विषय-वस्तु दी है उसपर लिखते चलने की जरूरत है। फिलहाल, स्त्री के साथ होना और खोना राजेन्द्र यादवों के लिए मुबारक हो!

मधुकर सिंह, संपादक 'इसबार'
धरहरा, आरा - 802301 (बिहार)

'बोल्ड लेखन' इस अंक की विशेषता..

'बोल्डलेखन' पर परिचर्चा इस अंक की विशेषता है, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। अन्य पत्रिकाओं को भी इसका अनुसरण करना चाहिए, इससे पाठकों को शहर विशेष के बुद्धिजीवियों के विचार- किसी सामयिक मुद्दे पर जानने को मिलेंगे। सत्य नारायण गुप्त का व्यंग्य 'टूटी सड़कों का राष्ट्रीय महत्त्व' भी अच्छा रहा।

रचनाओं के संपादन की ओर, विशेषकर वाक्य विन्यास और विराम चिन्ह्रों के सही प्रयोग की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है, अच्छी रचना होने पर भी कभी-कभी लेखक का मंतव्य स्पस्ट नहीं हो पाता। विराम चिन्ह्रों का गलत प्रयोग होने पर कभी-कभी अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उदाहरणतः 'साहित्य और विचारधारा' (राजेश प्र० वागीश) आलेख लेखक के विचारों की दृष्टि से पठनीय है, पर कहीं-कहीं अधूरे वाक्य और विराम-चिन्ह्रों का प्रयोग नहीं होने या गलत प्रयोग होने से पाठकों को लेखक का मंतव्य समझने में मुश्किल होती है। इसे प्रूफ की गलती भी कहा जा सकता है। जो कुछ भी हो इसपर ध्यान देने की आवश्यकता है।

लघु कथाएँ भी अच्छी हैं। पत्रिका नियमित निकले, यही शुभकामना है।

महेन्द्र राजा जैन, इलाहाबाद - 466 782

जीवन है क्या?..

वर्तमान संदर्भ के इस अंक से गुजरते हुए जीवन के बारे में कुछ जानने-समझने का अवसर

प्राप्त हुआ। जीवन के बारे में जब कभी हम अकेले में सोचते-विचारते हैं तो कई प्रश्न घुमड़ने लगते हैं! आखिर जीवन है क्या? मरना-जीना या और कुछ। जीवन शायद वह नहीं जो हम जी रहे हैं वरन कुछ वैसा, जैसा हम जीना चाहते हैं और जिसे जीने के लिए हम संघर्षरत रहते हैं।

जीवन के साथ कितने ही उतार-चढ़ाव जुड़े हैं। जिन्दगी की दौड़ में मनुष्य को काफी उलझनों और संकटों के बीच से गुजरना पड़ता है। कभी-कभी मन में यह प्रश्न उभरता है कि यदि सृष्टि नहीं होती तो मनुष्य भी नहीं होता, जब कुछ भी नहीं होता तो उलझन भी नहीं होती, न जीवन जीने की कश्मकश! खैर जीवन के बारे में जितना लिखा जाए, खोज की जाए कम है।

महाराज कृष्ण भरत, जम्मू-सामधेनी

अपनी पहचान बनाएगी..

पत्रिका के लिए जो संघर्ष करना होता है, इसका अनुमान आपकी इस पत्रिका से भी लगाया जा सकता है। धीरे-धीरे पत्रिका अपना रूप स्थिर करके अपनी पहचान बनायेगी यह आशा अवश्य बंधती है। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ लें।

मधुरेश, बरेली – 243 003

राजनीति के चक्रव्यूह में...

पत्रिका के इस अंक में बहुत ही अच्छी सामग्री संकलित कर सकी हैं आप। तितिशता और गहराई भी। कुछ अच्छे प्रश्न भी उठाये हैं आपने।

काफी कुछ पढ़ गया हूँ, लेकिन मेरी आयु अब विस्तार से लिखने की अनुमति नहीं देती।

मुझे आशा है कि आप इस स्तर को बनाये रखेंगी और राजनीति के चक्रव्यूह में फंसने की कोशिश नहीं करेंगी।

विष्णु प्रभाकर, दिल्ली – 34

ग़ैर जिम्मेदाराना हरकत....

डा० विद्याभूषण का आलेख 'शतदली सृजनशीलता का पारिजात' पढ़ गया। धर्मवीर भारती का रचनात्मक लेखन पुनर्मूल्यांकन का विषय है। एक व्यक्ति के रूप में उनकी ग़ैरजिम्मेदारी उनके साहित्य में भी झलकती है। विद्याभूषण जी ने उनकी पूर्व सहयोगी कान्ता भारती का उपन्यास 'रेत की मछली' पढ़ा होगा। उन्होंने 'माध्यम' में केशवचन्द्र वर्मा का भारती विषयक संस्मरण पढ़ा होगा। भारती राजेन्द्र यादव के सखा हैं। कान्ता जी से मुक्त होने के बाद भारती मुंबई जा बसे। दुबारा इलाहाबाद नहीं आये। 'इन फिरोजी होठों पर बर्बाद मेरी जिन्दगी' भारती जी की ग़ैरजिम्मेवार हरकत का एक सबूत है।

इलाहाबाद के उस समय के लेखकों से भारती विषयक संस्मरण मंगवाये। जयप्रकाश आंदोलन (१६७४) के समय भारती की कविता 'मुनादी' तत्कालीन भावुकता से ओतप्रोत है। विद्याभूषण जी ने लिखा है, 'जिसकी धार की दूसरी मिसाल हिन्दी में मुश्किल है।' उस आंदोलन के बहुचर्चित कवि बाबू लाल मधुकर, शायद गोपीबल्लभ सहाय, नागार्जुन आदि रहे हैं। नागार्जुन की कविता 'इंदु जी इंदु जी क्या हुआ आपको/भूल गयी बाप को' उसी समय आयी। वह भी तत्कालीन भावुकता से उत्पन्न है। कवि विद्याभूषण के लिए कविता का निष्कर्ष तत्कालीन भावुकता ही है क्या? भारती सधे पत्रकार थे। धर्मयुग के कई अंक लोकप्रिय हुए थे, 'पत्नी घर में प्रेयसी मन में। गंगा जी के पंडे, रंग बिरंगे झंडे/' ये भारती ही हैं जो इंदिरा जी का प्रशस्ति पत्र भी लिखते थे और जयप्रकाश का भी। १६७०-१६७३ के धर्मयुग का अंक देख जाए, कांग्रेस का यशोगान टंकित है। ७४-७६ का धर्मयुग देख जाए, जयप्रकाश, आडवाणी, वाजपेयी जनता पार्टी का यशोगान लिपिबद्ध है। कवि ने धर्मयुग की ऐतिहासिक भूमिका का स्मरण किया है। उसके अंकों को देखा जायें। तुरत-फुरत में कोई निष्कर्ष देना आसान नहीं है और खतरनाक भी।

अरुण कुमार, राँची।

दुराग्रह से ग्रसित नहीं...

मौजूदा अंक की अधिकांश रचनाएँ पढ़कर ऐसा लगता है कि यह साफ-सुथरी शाकाहारी पत्रिका है। बड़बोलापन नहीं, किसी भी लेखक पर छींटाकशी नहीं। दुराग्रह से ग्रसित भावना नहीं, किसी पर व्यर्थ का आक्षेप नहीं। गंदगी और अश्लीलता से बचने की सायास चेष्टा है। आत्म-प्रशंसा की रुग्णता नहीं है। जो है शुद्ध है, सात्विक है!

बिज्जी, बोरुंदा

इन पत्रों के अलावे हम इन पत्र मित्रों के भी आभारी हैं – विवेक द्विवेदी, डोमन साहू 'समीर', रूपसिंह चंदेल, चन्द्रेश्वर कर्ण, दीपक कुमार अज्ञात, खगेन्द्र ठाकुर, राम जन्म पाठक, ओम प्रकाश अवस्थी आदि।

प्राप्ति-स्वीकृति

पत्रिकाएं :-

1. कथाबिंब (कथा प्रधान त्रैमासिक पत्रिका), संपादक - डॉ० माधव सक्सेना अरविंद, ए-10, 'बसेरा', ऑफ दिन क्वारी रोड़, देवनार, मुम्बई - 400 088
2. हंस (जनचेतना का प्रगतिशील कथा - मासिक) संपादक - राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०, 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
3. नेहा (शिक्षा एवं स्वास्थ संबंधी त्रै. पत्रिका) संपादक - कुसुम बुढ़लाकोटी, नांगलिया अस्पताल परिसर, नार्मल रोड, गोरखपुर - 273001 (उ० प्र०)
4. युद्धरत आम-आदमी (त्रै.) संपादक- रमणिका गुप्ता, नवलेखन प्रकाशन, मेनरोड, हजारीबाग (झारखंड)
5. कथन (त्रैमासिक) संपादक - रमेश उपाध्याय, 107, साक्षरा अपार्टमेंट, ए-3, पश्चिमी विहार, नई दिल्ली-110 063
6. यू. एस. एम. पत्रिका (साहित्य, संस्कृति और इतिहास का द्वैमासिक दस्तावेज) संपादक - उमाशंकर मिश्र, सं० - यू. एस. एम. पत्रिका, ए - 32, अशोक नगर, गाजियाबाद - 201001
7. संप्रति (त्रैमासिक) संपादक - प्रताप सिंह सोढ़ी, संपादक, संप्रति, 109, श्री नगर, मेन रोड़, इंदौर ।
8. शेष (त्रैमासिक) संपादक - हसन जमाल, पन्ना निवास के सामने, लोहरापुर, जोधपुर-342 008
9. सहकार (त्रैमासिक) संपादक - डॉ० भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश', हिन्दी सहकार संस्थान, 362, सिविल लाइन्स (कल्याणी) उन्नाव -209801
10. विविध संवाद (पत्रकारिता संस्थान का त्रैमासिक) - 326, कहरवान, बिहारीपुर, बरेली - 243003
11. संबोधन (त्रैमासिक) संपादक - कमर मेवाड़ी, संबोधन त्रै., चांदपोल, काकरोली - 313324, जि. राजसमन्द
12. आंगीप्रभा (त्रैमासिक) संपादक - अमरेन्द्र, लाल खाँ दरगाह लेन, सराय, भागलपुर
13. मसि-कागद (त्रैमासिक) संपादक - श्याम सखा 'श्याम', 'पलाश', 12, विकासनगर, रोहतक-1
14. कथा सागर (त्रैमासिक) संपादक - तारिक असलम 'तस्नीम', लेखनी प्रकाशन 6/2, हारून नगर, फुलवारी शरीफ, पटना - 5
15. सामयिक वार्ता (मासिक) संपादक - किशन पटनायक, सी - 28, गली नं. 8ए, पश्चिम विनोद नगर, दिल्ली-110 092
16. वैश्य दर्पण, संपादक - रमेश नीलकमल, संजय प्रकाशन, अक्षर बिहार, अवन्तिका मार्ग, जमालपुर
17. वर्तिका, संपादक - संजय कुमार सिंहा, 'वर्तिका' मधुबनी, पूर्णिया - 854 301 (बिहार)
18. युग स्पंदन, संपादक - भ.प्र. निदारिया, 1084/44, मानकपुरा, करोलबाग, नई दिल्ली-110 005
19. आबरू (मासिक) संपादक - बलजीत सिंह रैना, विहाइंड शहीद फिलिंग स्टेशन, जम्मू - 180 010
20. संकल्परथ (त्रै.) संपादक - राम अधीर -108/1, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
21. सार्थक (त्रैमासिक) संपादक - मधुकर गौड़- ए-302, ब्लू ओशन - 1 , ब्लू एंपायर कांप्लेक्स, एकता नगर के पास, महावीर नगर, कांदिवली (प.) मुंबई - 400 067
22. अभिनव प्रसंगवश (त्रै.) संपादक - डा. वेदप्रकाश अमिताभ -14/106, राजकिला, मोतीमिल कंपाउंड, अलीगढ़ (उ.प्र.)
23. रंगप्रभा (वार्षिकी) संपादक - शिवमूरत सिंह - ददरीघाट, गाजीपुर (उ.प्र.) - 233001
24. अपूर्व जनगाथा (त्रै.) संपादक डॉ. किरण चन्द्र शर्मा, डी-766, जनकल्याण मार्ग भजनपुरा दिल्ली - 53
25. सामधेनी (त्रै.) संपादक - कृष्णकांत अक्षर, पाठक भवन, जियाखेल शाहजहाँ पुर (उ० प्र०) -1242 001
26. अक्षर(मासिक) संपादक -सुरेश जांगिड़ उदय, डी० सी० निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल -136027

पुस्तकें :- 1. कथा परदेश (कहानी संग्रह) लेखक - के० सी० मोहन, अनुवाद दर्शन मितवा, प्रकाशक - उड़ान पब्लिकेशंस, वाटर वर्कस रोड, मानसा - 151505, मूल्य - 40रुपये ।

2. प्रतिनिधि रचनाएँ (कहानी संग्रह) लेखक - मोतीलाल जोतवाणी, प्रकाशक - संपर्क प्रकाशन, बी-14 दयानंद कॉलोनी लाजपत नगर, नई दिल्ली - 110024, मूल्य - 225 रुपये

(जिन संपादक मित्रों की पत्रिकाएँ नियमित नहीं मिल पा रही है, उनका नाम प्राप्ति - स्वीकृति अंक में देने हेतु असमर्थ हैं हम - व्यवस्थापक)

- Choicest Wedding Sarees
- Sarees for all occasion
- Sarees for Office & Daily Use
- Lehnga Chunri Matchings

SAREE EMPORIUM

- Readymade Salwar Suit for Wedding
- Office and Daily Use • Dupatta Matching
- Nighties • Lachas

(महिला परिधानों की सिलाई की उत्तम व्यवस्था)

OPP. SHANTI (RATANLAL) PETROL PUMP, MAIN ROAD, RANCHI

© : 2308219